Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

272
11/1~A

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ श्रीशङ्करभगवत्पादा विजयन्तेतराम्

(महेश्वर-ग्रन्थमाला का द्वितीय-पुष्प)

सिद्धान्त-द्वय-समीक्षा ।

तथा

गीतासार-श्लोक-व्याख्यान ।

लेखक-पूज्यपाद महामण्डलेश्वर
१०८ स्वामी महेश्वरानन्द महाराज

मूल्य-छ आना, मूल लागत से भी कम
पोस्ट व्यय पृथक् ।

पता :- संस्कृत विद्यालय
संन्यासाश्रम-विले-पारला बम्बई.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

11/12 A

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिः ॐ तत्सत्

वन्दे विश्वेश्वरं विभुम् ।

महेश्वर-ग्रन्थमालाका-द्वितीय-पुष्प ।

सिद्धान्त-द्वय-समीक्षा ।

आचार्य शंकर एवं आचार्य रामानुज-दर्शन-समालोचना

तथा

गीता-सार-श्लोक-व्याख्यान ।

('धर्म' 'शरण' एवं 'एक' शब्द के तात्त्विक-अर्थ)

(लेखक-पूज्यपाद-अनन्तश्रीविभूषित-कनखल-
वंगलामठाधीश्वर-आचार्यप्रवर १००८
महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज)

-: प्रकाशक :-

स्वामी पूर्णानन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिः ॐ श्रीविश्वनाथो विजयतेतराम् ।

अद्वैतोक्तिपटून् बटून् वयमपि बालान्नमस्कुर्महे,
ये तु द्वन्द्वपदास्तदीयशिरसि न्यस्यामि वामं पदम् ।
सिंहः स्वीयशिशून्निवेश्य हृदये सान्द्रादरादामृश-
त्यावेशेन भिनत्ति संभ्रमपदं मत्तेभकुम्भस्थलम् ॥

अमृत मय अद्वैतके कथनमें प्रवीण ऐसे छोटे-छोटे-बटुकोंका भी हम प्रेमसे अभिवादन करते हैं। परन्तु जो विषमय-द्वैत का प्रतिपादन करते हैं, उनके शिर पर, वाम पैर रखकर उनको उस विषमय द्वैत-भावसे मुक्त करनेका हम प्रयास करते हैं। जैसे सिंह अपने शिशुओंको हृदयसे लगाकर बडा प्यार करता रहता है। परन्तु वही सिंह, बडे डिल-डौल वाले मदोन्मत्त-हाथियोंके गण्ड-स्थलोंका भी बडे आवेश के साथ भेदन कर देता है। प्रकृतमें सिंह अद्वैतवादी है, और हाथी द्वैतवादी। गहन वनमें सिंह एकाकी रहकर भी आत्मविश्वासी होनेके कारण सदा निर्भय रहता है। परन्तु हाथी अपने झुण्डमें रहता हुआ भी आत्म-विश्वास न होने के कारण लघुकाय-सिंहसे सदा भयभीत बना रहता है। इस-लिए सिंह ही एकमात्र 'वनराज' एवं 'मृगराज' कहा जाता है।

मूल्य-छः आना, मूल-लागतसे भी कम। पोस्ट व्यय-अलग
-: ग्रन्थ मिलनेका पता :-
संस्कृत-विद्यालय-संन्यासाश्रम-विले-पारला, बम्बई।

मुद्रकः—कान्तीलाल डाह्याभाई पटेल, मंगल-मुद्रणालय,
फत्तेहभाईनी हवेली, रतनपोल- अमदावाद.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीविश्वनाथो विजयतेतराम्

कनखल-हरिद्वारवास्तव्य, ब्रह्मनिष्ठ, श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य,
दार्शनिकसार्वभौम, विद्यावारिधि, न्यायमार्तण्ड, वेदान्तवागीश,
श्री १०८ स्वामी श्री महेश्वरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

11|12A

ॐ श्रीः परमात्मने नमः

भूमिका ।

जिज्ञासु-सज्जन-वृन्द !

सौभाग्य तथा दौर्भाग्यवश इस धराधामपर सबसे प्राचीन, तथा मानव स्वभावके अत्यन्त-अनुकूल-वैदिक-सनातन-आर्य धर्ममें असंख्य संप्रदाय प्रचलित हो गये। सौभाग्य: इसलिये है कि-आचार्य-महानुभावोंने देश, काल, परिस्थिति, तथा जन-रुचिका ध्यान रखकर मनुष्योंके कल्याण के लिये सरलसे सरल-अनेक मार्ग प्रदर्शित किये। जो कि-भिन्न-भिन्न होते हुए भी साक्षात् या परंपरया एक ही लक्ष्यके प्रति जानेवाले हैं। प्रथमतः यह विचारधारा, उपासना काण्ड तक सीमित होगी, ऐसा प्रतीत होता है। और यह लक्ष्य रहा होगा कि-सभी संप्रदायों के अनुसार-आचरण के द्वारा अन्तः-करणकी शुद्धि प्राप्त कर जीव उस परम-आनन्द स्वरूप-अद्वैत तत्त्वको प्राप्त कर सकेगा।

किन्तु काल एवं भाग्य दोषसे उस स्वतः सिद्ध-परम-प्रामाणिक-अद्वैतके विषयमें भी मत-भेद प्रारम्भ हो गया, यहीं से वह दुर्भाग्य प्रारम्भ होता है, जिसकी चर्चा यहाँ उपक्रममें की गई है। यद्यपि-सम्मान्य-आचार्योंकी इसमें भी कोई गूढ-लोक-कल्याण भावना होगी, किन्तु वह प्रकट न हो सकी। इसका कारण परवर्ती-सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंकी अहं-भावना, दुराग्रह अथवा कुछ अन्य ही हो, यह निश्चित नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा जा सकता। इस किसी अज्ञात-कारण वश ही इस पुनीत-अद्वैत-तत्त्वमें भी प्रकारान्तरसे द्वैत-भावनाका प्रवेश कराकर, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, तथा अचिन्त्य भेदाभेद, आदि वाद प्रचलित किये गये। इनको प्रामाणिक करने के लिए-परम प्रमाणरूपसे प्रसिद्ध-भारतीय जनताके श्रद्धा भाजन-उपनिषद्-गीता एवं ब्रह्मसूत्ररूप-प्रस्थानत्रयका-आश्रय लेना आवश्यक था, अतः इनका ही स्व-स्वरुचिके अनुसार व्याख्यान (भाष्य) किया गया। उसमें अपने सिद्धान्त का समर्थन एवं पर-सिद्धान्त का खण्डन ही मुख्य लक्ष्य रहा, तत्त्वनिर्णय तो गौण हो ही गया।

उन-विभिन्न-व्याख्याओंको पढकर उनसे सारासार का ग्रहण कर तत्त्वनिर्णय करना साधारण-मनुष्योंके लिए अशक्य हो गया। अतः विज्ञ-महानुभावोंके ऊपर यह भार आ जाता है कि-साधारण-जनताके हितके लिए उन सिद्धान्तोंको सरल एवं संक्षिप्त-शब्दोंमें रखकर उनकी निष्पक्षपातरूपसे प्रामाणिक-युक्तियुक्त समीक्षा कर दी जाय। जिससे जिज्ञासुओंका भ्रम दूर होवे और आनन्दप्रद-तत्त्वनिर्णय हो जाय।

इसी विषयको ध्यानमें रखकर स्वनामधन्य-महामहनीयकीर्ति---श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य—सकलनिगमागम-शास्त्रपारंगत-श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ-स्वामी १००८ श्रीमहेश्वरानन्द महाराज महामण्डलेश्वरजी महानुभावने अनेकों वैदिक तथा-पौराणिक-ग्रन्थोंपर प्रकाण्डपाण्डित्य पूर्ण व्याख्याएँ लिखी हैं। उन्होंने ही इस प्रकृत-पुस्तिकामें प्रथमतः शांकरमत (अद्वैत) रामानुजमत (विशिष्टाद्वैत) का संक्षिप्त परिचय के साथ उनकी समीक्षा भी की है। यह समीक्षा प्रथम, काशी-धाम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से प्रकट होनेवाले विश्वनाथ नामक मासिकपत्रमें क्रमशः प्रकाशित हुई थी।

तथापि-अनेक सन्त महात्मा तथा जिज्ञासु-भक्तों की इसकी पुस्तकाकाररूपसे प्रकट होने की प्रबल-भावना का सम्मानकर 'महेश्वरग्रन्थमाला' का द्वितीय पुष्परूपसे इसका प्रकाशन किया जा रहा है। नाम एवं रूप (फोटा) का मोह छोड़कर निःस्वार्थभावसे महेश्वर-ग्रन्थमाला का प्रारम्भ करानेवाले-अप्रकाशित नामवाले श्रेष्ठी महानुभावका सहृदय-पाठक गण आभारी होवेंगे, इसमें संशय नहीं। अन्तर्यामी विश्वनाथ भगवान् ऐसे परोपकारी ख्यातिके अनिच्छुक निष्कामभाववाले भक्तोंका सर्वथा सदा अभ्युदय एवं कल्याण करें, ऐसी उन करुणावरुणालय-प्रभुसे प्रार्थना है। तथा इसका छपाने आदि का प्रबन्ध करानेवाले तथा पूज्यस्वामीजीका त्रिरंगी फोटो रखनेवाले-अमदावादनिवासी सेठ-श्री वहेचरलालभाई भी अनेक धन्यवादके योग्य हैं, भगवान् उनको भी सदा सुखी एवं समृद्ध बनाये रक्खे, ऐसी प्रभुसे प्रार्थना है। और इस समीक्षाके साथ 'परिशिष्ट-गीतासारतत्त्व' नामका श्रीस्वामीजी महाराजका लेख-जो प्रथम गोरखपुर गीता-प्रेस से प्रकाशित-प्रसिद्ध-'कल्याण' मासिक पत्रके विशेषांक-'गीतातत्त्वाङ्क' में प्रकाशित हुआ था-उसको भी जोड दिया जाता है।

इस छोटी-सी परन्तु सारगर्भित, सरल पुस्तक को पढकर थोडा ज्ञान रखनेवाले जिज्ञासु भी दोनों मतोंके सार को समझने के साथ ही स्वयं निश्चय कर सकेंगे कि-कौन मत हेय है, और कौन उपादेय है, कौन मत प्रमाण एवं युक्ति के प्रतिकूल है, और कौन मत अनुकूल है। इससे यदि थोडे-से जिज्ञासुओंको भी अपने मानव जीवनके लक्ष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप परम-अभीष्ट-उस अद्वैततत्त्वके प्रति उन्मुख होनेमें सहायता मिली-जो कि-निश्चित है-तो ग्रन्थकर्ता महानुभावको परम सन्तोष के साथ ऐसे लोकोपयोगी-अन्य ग्रन्थोंके निर्माणमें अदृश्य प्रेरणा प्राप्त होगी। आप-सज्जनपाठकोंसे यही अनुरोध है कि-इस ग्रन्थको अधिकाधिक मनोयोगसे पढकर परमकल्याणके भागी बनें।

संन्यासाश्रम-विलेपारला
बम्बई नं. २४
अनन्त-चतुर्दशी-विक्रम
संवत् २०१२

आपका सबका हितेच्छु.
विश्वम्भरझा-शर्मा
व्या. वे. सा. आचार्य प्रधानाध्यापक-
का० वि० आ० संस्कृत महाविद्यालय।

प्रत्यगात्मा ही एकमात्र सुखस्वरूप है।

यच्चात्मान्यद्ब्रुवाणं प्रियमिति तव तद्रोत्स्यतीति ब्रवीति,
प्राज्ञेनैक्यं सुषुप्तौ निगदति च यदानन्दसंविन्मयेन।
इच्छा यस्यानुकूले त्रिजगति विदिता स्वप्रतीपे जिहासा,
यच्च स्यां सर्वदेति स्पृहयति तदसौ प्रत्यगात्मा सुखात्मा ॥

जो कोई मूढ मानव, आत्मासे अन्य-पदार्थको प्रिय कहता है, या मानता है, उसके प्रति श्रुति कहती है-कि-वह-आत्मभिन्न-प्रिय पदार्थ, अपने वियोगसे तुझे अवश्य ही रुलावेगा, अर्थात् वही प्रिय पदार्थ-अप्रिय रूपसे परिणत होकर तुझे दुःख देवेगा, इसलिए एकमात्र अविनाशी-आत्माको ही प्रिय मान, अन्यको नहीं। श्रुति कहती है कि-आत्माकी परमप्रियता एवं परमानन्दरूपता सुषुप्तिमें सभी प्राणियोंको विदित होती है-उस समय सभी प्राणी-चैतन्यानन्दमय-प्राज्ञ आत्माके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथ-एकता का अनुभव करते हैं। तीनों लोकोंमें यह बात विश्वविदित है कि—जो पदार्थ-आत्माके अनुकूल होते हैं-आत्माको सुख देते हैं-उनकी ही सभी इच्छा करते हैं; एवं जो पदार्थ-आत्माके प्रतिकूल होते हैं-आत्माको दुःख देते हैं-उनके परित्यागकी इच्छा रखते हैं। और प्राणिमात्र यह चाहते हैं कि-मैं सर्वदा आनन्द-पूर्ण ही बना रहुँ, इससे यह निश्चित होता है कि-एकमात्र वह-महान् प्रत्यगात्मा ही सुखस्वरूप है।

भक्त की भावना।

इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं,
मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पव्रजम्।
माकन्दं पिकसुन्दरीव रमणीवात्मेश्वरं प्रोषितं,
चेतोवृत्तिरियं सदा प्रियवर! त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥

हे प्रियवर! सर्वात्मन्! परमानन्द-सागर! प्रभो! भगवन्! यह मेरी चित्त-वृत्ति, आपको सदा इस प्रकार देखने के लिए उत्कण्ठित बनी रहती है कि-जिस प्रकार कुमुदिनी या चकोर-स्त्री, चन्द्रमाको, चकवाचकवीका समुदाय, कमलिनीके वल्लभ-सूर्यको, (रात्रिमें चकवा-चकवीका वियोग रहता है इसलिए वे सूर्यकी प्रतीक्षा करते हैं) चातकोंका समूह मेघको, भ्रमरोंकी पंक्ति, पुष्पसमुदायको, कोकिला, फलाढ्य-आम्रवृक्षको, तथा रमणी सती-स्त्री, बाहर गये हुए अपने प्रियतम-पतिदेवको देखने के लिए सदा उत्कण्ठित बनी रहती हैं। अर्थात् आप चन्द्रमाके समान अत्याह्लादक-शान्त आनन्दमय हैं, सूर्यके समान विश्व-प्रकाशक स्वयं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्योति-स्वरूप हैं, मेघके समान श्याम सुन्दर एवं विश्वसंतपंक हैं, पुष्पोंके समान आपकी सत्ता-स्फूर्ति विश्वव्यापिनी है, आम्र-वृक्ष के समान आप निर्द्वन्द्व एवं सर्वभूतसुहृद् हैं, एवं पतिदेवके समान परमप्रेमास्पद हैं, ऐसे आपके प्रति-यह मेरी चित्तवृत्ति, चकोर-कोक-चातक-मधुप-कोकिला एवं रमणी के समान होकर सदासंलग्न वनी रहे, यही आप कृपामय-प्रभुसे प्रार्थना है।

कल्याणकारी-सदुपदेश।

जिह्वे! कीर्तय केशवं मुररिपुं, चेतो! भज श्रीधरं,
पाणिद्वन्द्व! समर्चयाऽच्युतकथां श्रोत्रद्वय! त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय! हरेर्गच्छाङ्घ्रिपद्मालयम्,
जिघ्र घ्राण! मुकुन्दपादतुलसीं शीर्षन्! नमाधोक्षजम्॥

हे जीभ! तू प्रेमसे केशव-मुरारी भगवान् का कीर्तन कर, हे चित्त! तू एकाग्रतासे श्रीधर-विष्णुका भजन (चिन्तन) कर, हे दोनों हाथ! तुम उस नारायण भगवान्का अर्चन-पूजन किया करो। हे मेरे दो कान! तुम उस अच्युत-भगवान् की रसभरी कथा को सुना करो। हे मेरे दो नेत्र! तुम सर्वत्र सभी जड चेतन पदार्थोंमें उस प्रियतम श्रीकृष्ण को सतत देखा करो। हे मेरे दो चरणकमल! तुम भी नित्य-नियम पूर्वक श्रीहरिके मंदिरमें जाया करो। हे मेरी नासिका! तू मुकुन्द भगवान् के चरणोंमें समर्पित-हुई-तुलसीकी सुगंधि को ग्रहण कर। हे मेरा उत्तमांग शिर! तू अधोक्षज-भगवान्-श्री हरिको नमन कर।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आध्यात्मिक-ज्ञानगम्य-श्रीकृष्ण।

स्वो देहो व्रजवासिनां जनपदो हृत्पंकजं गोकुलं,
गावश्चैव निवासिनो गुणगणा गोप्यस्तु सद्वृत्तयः।
श्रीकृष्णस्तु चिदात्मकः सुमतिभिर्गोपीभिराक्रीडते,
विद्याराधिकया समं सुरमते प्राप्नोत्यपारं सुखम् ॥

यह अपना देह व्रज-भूमि है। यह हृदयकमल गोकुल है। उसमें निवास करनेवाले-क्षमा-दया-प्रेम-विवेक आदि सद्गुण शान्तिरूपी-मधुर दूध देनेवाली-गौवें हैं। ब्रह्माकार-निर्द्वन्द्व-शुभ-वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। श्रीकृष्ण चिदात्मा है। वह सुमतिरूपी-गोपियोंके साथ रमण करता रहता है। पवित्र-ब्रह्मविद्या श्रीराधिकाजी है। उसके साथ आत्माराम-श्रीकृष्ण जब रमण करता है, तब उसे अपार-महान्-सुखकी प्राप्ति होती है।

अभीष्ट-प्रद-गुरुमूर्ति श्रीशंकर।

सोमः सोमकलाविभूषितजटाजूटः प्रसन्नेक्षणो,
विद्यार्थार्थिभिरादरेण परितः संसेव्यमानो जनैः।
अज्ञानान्धतमोविदारणपटु ब्रह्मात्मविज्ञानदो,
मच्चित्तान्तरसंस्थितः करुणया कुर्यादभीष्टं मम ॥

चन्द्र की कलासे जिसका जटाजूट विभूषित है, जिसके नेत्र सदा प्रसन्न हैं, जो विद्यार्थी एवं अर्थार्थी-जनों के द्वारा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निरन्तर सेवित होता है, जो मुमुक्षुओंको ब्रह्मात्माके अभेद विज्ञान का दान देकर उनके अज्ञानरूपी अन्ध-तम के विदारण करनेमें प्रवीण है, ऐसा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवती उमा के सहचर श्री शंकर, अपनी अहैतुकी करुणा द्वारा मेरे चित्त के भीतर बिराजमान होकर मेरा सर्वविध-अभीष्ट प्रदान करे।

प्रश्नोत्तर।

किं तीर्थं ? हरिपादपद्मभजनं, किं रत्न ?–मच्छामतिः ।
किं शास्त्रं ? श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदयः ॥
किं मित्रं ? सततोपकाररसिकः तत्त्वाववोधः सखे ! ।
कः शत्रु र्वद खेददानकुशलो दुर्वासनानाश्चयः ॥

प्र० पवित्र बनानेवाला तीर्थ क्या है? उ० श्रीहरिके चरणकमलका भजन (ध्यान) प्र० बहुमूल्य-रत्न क्या है? उ० विवेक-विचारशीला-बुद्धि। प्र० शास्त्र क्या है? उ० जिसके श्रवणसे द्वैतरूप अन्धकारका उदय नष्ट हो जाय, वह। प्र० निरन्तर हित करनेमें रसिक-ऐसा मित्र कौन है? उ० हे सखे! अद्वय-ब्रह्म तत्त्वका अवबोध ही सच्चा मित्र है। प्र० कहिये विक्षेपप्रदानमें कुशल ऐसा अहितकर शत्रु कौन है? उ० दुष्ट-वासनाओंका समुदाय। इसलिये ऐसे शत्रुका त्याग कर, बोधमित्रका सेवन कर, अद्वैतशास्त्रका श्रवणकर पवित्र मति प्राप्त कर-निरन्तर श्रीहरिका अनन्य प्रेमसे ध्यान करते रहना चाहिये, यही कल्याण का प्रशस्त मार्ग है।

कृष्ण नामकी महिमा।

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधम्,
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुभरज्वालाजटालः शिखी,
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम् ॥

'कृष्ण' ऐसा दो वर्ण, पापरूपी पर्वतोंका नाशक वज्र है, संसाररूपी महान् रोगका ध्वंसक सिद्ध औषध है, मिथ्या-ज्ञानरूपी रात्रिका विस्तृत-मोहान्धकारका मर्दक-तीक्ष्णकिरणों-वाले सूर्यका उदय है। क्रूर-क्लेशरूपीवृक्षोंका नाशक-प्रचण्ड ज्वालावाली अग्नि है, और शान्तिरूपीप्रासादका द्वार है, वह सदा विजयी हो रहा है।

मोक्ष लाभ ही परम लाभ है।

किं राज्येन धनेन धान्यनिधिभिर्देहस्य सद्भूषणैः,
पाण्डित्येन भुजाबलेन महता वाचा पटुत्वेन च।
जात्याऽप्युत्तमसत्कुलेन शुचिना सर्वैर्गुणानां गणैः,
आत्मा यैर्न विमोचितोऽतिगहनात् संसारकारागृहात् ॥

जिस मनुष्यने अपने आत्माको इस अतिगहन संसार-रूपी कारागृहसे विमुक्त नहीं किया, उसे राज्य मिला तो भी क्या? धन एवं धान्योंका भण्डार, देहके उत्तम-आभूषण, पाण्डित्य, तथा भुजबल, मिला तो भी क्या हुआ? बडी-भाषण-शक्ति मिली, उत्तमजाति एवं पवित्र कुल भी मिला, अथवा सभी प्रशस्त-गुणोंका समुदाय भी मिला तो भी क्या हुआ? अर्थात् मोक्षलाभ विना ये सब लाभ निरर्थक एवं क्लेशप्रद हैं।

भगवान् श्री विष्णुकी वन्दना।

लक्ष्मीकौस्तुभवक्षसं मुररिपुं शंखासिकौमोदकी-
हस्तं पद्मपलाशताम्रनयनं पीताम्बरं शार्ङ्गिणम्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेघश्याममुदारपीवरचतुर्बाहुं प्रधानात्परम्,
श्रीवत्साङ्कमनाथनाथममृतं वन्दे मुकुन्दं मुदा ॥

जिसके वृक्षस्थलमें लक्ष्मी एवं कौस्तुभमणि है, जो मुर-राक्षसका ध्वंसक है, जिसने अपने हाथोंमें शंख, चक्र, तल्वार, एवं कौमोदकी गदा धारण की हैं। जिसके नयन, कमल-पत्रके समान किञ्चित् लाल हैं, जिसने पीताम्बर एवं शार्ङ्गनामका धनुष् धारण किया है, जिसका मेघके समान मनोहर श्याम वर्ण है, जिसके लम्बे मांसल, चार बाहु हैं, जो अव्यक्त-प्रकृतिसे पर है, जिसके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न है, जो अनाथोंका नाथ-अमृतरूप-मुकुन्द श्रीविष्णु है, उसकी मैं प्रसन्नताके साथ वन्दना करता हू।

भगवान् श्रीशंकरकी वन्दना।

यस्याशाः परिधानमिन्दुकलिका धत्ते शिखण्डश्रियम,
ज्वालापल्लवितः शिखी दृशि शिरोरङ्गे सरिन्नृत्यति ।
यं पश्यन्ति निरन्तरायमनसः संसारमोहच्छिदम्,
तं वन्दे सुरवृन्दवन्दितपदद्वन्द्वारविन्दं शिवम् ॥

जिसके दिशाएँ वस्त्र हैं, जिसका मस्तक चन्द्रकला द्वारा मयूर-पूछ की शोभाको धारण कर रहा है। जिसके मध्यनेत्रमें प्रचण्ड-ज्वालावाला अग्नि है, जिसके शिरमें गंगा नदी क्रीडा कर रही है। जिसे विक्षेपरहित एकाग्रमनवाले देख सकते हैं, जो ज्ञानोपदेशद्वारा या कृपाद्वारा संसारमोह का छेदन करता है, जिसके चरणकमल देववृन्दों द्वारा वन्दित है, उस भगवान् श्रीशिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिः ॐ तत्सत्

श्री विश्वनाथो विजयतेतराम् ।

सिद्धान्त-द्वय-समीक्षा ।

(आचार्य-शंकर एवं आचार्य-रामानुज-दर्शन समालोचना)

(लेखक श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-दार्शनिक सार्वभौम-विद्यावारिधि-न्यायमार्तण्ड-वेदान्तवागीश श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ १०८ स्वामी श्री महेश्वरानन्दजी महामण्डलेश्वर महाराज)

मंगलाचरणम् ।

वक्त्रारमासाद्य यमेव नित्या, सरस्वती स्वार्थसमन्विताऽऽसीत् ।
निरस्तदुस्तर्ककलंकपंका, नमामि तं शंकरमर्चिताङ्घ्रिम् ॥

वेदान्तार्थतदाभास-क्षीरनीरविवेकिनम् ।
नमामि भगवत्पादं, परहंसधुरंधरम् ॥
वन्दे श्रीशंकराचार्यान् शंकरान् जनशंकरान् ।
बौद्ध (द्वैत) नाशंकरान् स्वैरान् सर्वराजवशंकरान् ॥

प्रस्थानत्रयके भाष्य द्वारा व्याख्यान करनेवाले-जिस आचार्य-भगवत्पाद-शंकर स्वामीको प्राप्त होकर नित्य-अपौरुषेयी-वेदवाणी, दुष्ट-तर्क रूपी कलंकके पंक (कीचड) से निर्मुक्त, तथा वास्तविक-अर्थसे युक्त हो गई। अत एव समस्त-विश्वसे पूजित हैं-चरण कमल-जिसके ऐसे जगत् गुरु-आचार्य-श्रीशंकर-स्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो वेदान्त यानी वेदोंका ज्ञानकाण्ड-उपनिषदोंका यथार्थ सत्य अर्थ एवं खींचातानीका असत्य-अर्थरूपी क्षीर-नीरका विवेकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमहंस-संन्यासियों का धुरंधर महान् आचार्य है। उस भगवत्पाद, (पूज्य भगवान्) श्री शंकरस्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो-विश्व-सुखकर, मुमुक्षु-जनोंके लिए विशेषतः सुखकर, बौद्धादिद्वैतमतों के विनाशकर, एवं समस्त-राजाओंको अपने वशमें करनेवाले-सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र वीतराग-आद्य-जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य हैं-उनकी मैं श्रद्धापूर्वक वन्दना करता हूँ।

अवतरणिका।

वेदान्त-आध्यात्मिक-ज्ञान की पराकाष्ठा है। वेद का अर्थ है-जानना और अन्त का अर्थ है-समाप्ति। अर्थात्-उस महनीय-अर्थ को जानकर अन्य-ज्ञातव्य-अर्थ की सदा के लिये समाप्ति हो जाती है। यही वेदान्त है। अत एव श्रीभगवान् ने गीतामें कहा है—'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते।' (७।२) अर्थात् उस प्रत्यगभिन्न-अद्वय ब्रह्मको जानकर यहाँ पुनः और कुछ भी ज्ञातव्य अवशिष्ट नहीं रहता, यानी ज्ञातव्य की समाप्ति हो जाती है। जब कुछ ज्ञातव्य नहीं रहता, तब कर्तव्य भी समाप्त हो जाता है। इसलिए वेदान्तका यथावत्-अनुसंधान ही बुद्धि की चरम सीमा है, दार्शनिक-विचारोंका अत्युन्नत-प्रोज्ज्वल-आनन्दमय-प्रकाश-स्तंभ है। भारतीय-आर्य साहित्यका कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं है, जिस पर वेदान्त-विज्ञान की विशुद्ध-उज्ज्वल प्रभा न पडी हो। अत एव वेदान्त, भारतीय-धार्मिक-सद्भावों का मूल-बीज है। जीवनकी अगाध-शान्तिका एवं निरतिशय-सुखका शाश्वत-स्रोत है। एवं दुःखमय-भवसागरसे पार होने की एकमात्र सुदृढ-नौका है। वेदान्तका मुख्य अर्थ है-उपनिषद्। अत एव इनके तात्पर्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को यथावत् प्रकट करने के लिए-श्रीभगवान् द्वारा प्रकट की हुई-गीता भी वेदान्त है। अत एव गीताका 'अद्वैतामृतवर्षिणी' ऐसा यथार्थ-टाईटल है। इस प्रकार उपनिषदोंके वाक्यों के संदेहको निवारण करने के लिए एवं यथावत्-तात्पर्यको विस्पष्ट करनेके लिए श्रीबादरायणमुनि द्वारा-विरचित-ब्रह्मसूत्र भी वेदान्त दर्शन ही कहा जाता है। एवं श्रीमद्भागवत-महा-पुराण भी समस्त वेदान्तोंका सार रूपसे ही विख्यात है—
'सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।' (भा. १२।१३।१५)
इस प्रकार-उपनिषत्-गीता ब्रह्मसूत्र एवं भागवतरूप प्रस्थान चतुष्टय रूपसे वेदान्त अवगत होता है।

पाश्चात्य-देशके विद्वानोंने भी वेदान्त का महत्व और उसके गौरवकी प्रशंसा मुक्त कण्ठसे गाई है। वे कहते हैं कि-भूमण्डलके समस्त-धार्मिक-साहित्यमें-उपनिषत् एवं गीतासे बढकर और कोई स्तुत्य पुस्तक नहीं है। वेदान्त के विचारोंसे बढकर-अत्युन्नत शान्ति सुखप्रद और कोई दार्शनिक-विचार नहीं है। इन्हीं विचारों के द्वारा ही इस द्वन्द्व-मय क्षणभङ्गुर-संसारमें मानवको शान्ति एवं आनन्द मिल सकता है।

'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

(ज्ञानसे ही कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है, ज्ञान के विना मुक्तिका लाभ नहीं मिलता) इत्यादि श्रुतियोंके वच-नोंसे यह निश्चित होता है कि—'वेदान्त विज्ञान ही परम श्रेयका साधन है' परन्तु वह वेदान्त-विज्ञान भी एक रूपसे देखनेमें नहीं आता, अद्वैत; विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, आदि विभिन्न मतोंसे विभक्त-सा दीखता है। इन विभिन्न-मतोंका परस्पर विरोध होने के कारण समन्वय भी नहीं बनता। अतः कौन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्य वेदान्त-रहस्यके वास्तविकज्ञाता एवं उसके यथार्थ अर्थके प्रतिपादक हैं; तथा कौन सिद्धान्त श्रुति स्मृति एवं तर्कानुमोदित है, यह स्पष्ट बतलानेके लिये अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्तोंकी विचाररूप-समीक्षा द्वारा तत्त्व-बुभुत्सुओंका मन्तव्य-लक्ष्य स्थिर किया जाता है। जबतक कि-किसी एक लक्ष्यका स्थिर निश्चय न हो, तबतक परम-श्रद्धाके साथ उस पर अग्रसर होना परम दुर्लभ है, अतः एक-लक्ष्यका स्थिर निश्चयार्थ ही यह लेखरूप प्रयत्न है।

(आचार्य शंकरका सिद्धान्त)

आत्मतत्त्व एक ही है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी पारमार्थिक-अबाधित तत्त्व नहीं है।

(आचार्य रामानुजका सिद्धान्त)

चित् (चेतन-जीव) और अचित् जड़-प्रकृति-पृथिवी आदि) रूप शरीरसे विशिष्ट आत्मा एक है, विशिष्ट आत्मासे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(समीक्षा)

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छां. ३।१४।१) यह सब कुछ निश्चयसे ब्रह्म ही है, 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० २।४.५) यह सब कुछ यह आत्माही है, 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छां० ६ ८।७) यह सब आत्मा है, इत्यादि श्रुतियोंके अनुरोधसे ब्रह्मसे सम्बद्ध या उससे असम्बद्ध, ब्रह्मका शरीर-रूप, या अंशरूप, या धर्मरूप अन्य कुछ भी जड़ या चेतन वस्तु पारमार्थिक सिद्ध नहीं हो सकती। 'नेह नानास्ति किञ्चन' (बृ० ४.४।१९) उस अद्वितीय-ब्रह्ममें वस्तुतः

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किसी भी प्रकारसे अनेकरूप द्वैत प्रपञ्च नहीं है। जो है -प्रतीयमान-नानात्व, वह मायामात्र आरोपित है। अत एव श्रीमद्भागवतमें यही कहा है कि—मायामात्रमिदं राजन् ! नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥' (१२।४।२५)

चेतन-जीव और जड-पृथ्व्यादि ये दोनों आत्मा (परमात्मा) के शरीर नहीं हो सकते, इसमें कोई प्रमाण या युक्ति नहीं मिलती, शुभाशुभ-कर्मसे जन्य जो सुख दुःखादि रूप फल हैं, उनके भोगों (अनुभवों) के आश्रय का नाम शरीर है, यह लोकमें एवं शास्त्र में प्रसिद्ध है— 'कर्मजन्यफलभोगायतनं हि शरीरं भवति।' परमात्मामें कर्मजन्य-फलभोग कैसे हो सकता है? उसमें भोग स्वीकार करने पर वह भोक्ता (भोग का आश्रय) हो जायगा, भोक्ता होनेसे वह परमात्मा ही न रहेगा, जीव हो जायगा।

'यस्य पृथिवी शरीरं, यस्यापः शरीरम्, यस्यात्मा शरीरम्' (बृ० ३।७।२-३) इत्यादि श्रुति में शरीर शब्द का स्वरूप अर्थ है। लोकमें भी स्वरूप अर्थमें शरीर शब्द का प्रयोग देखा जाता है, जैसे 'शिलापुत्रकस्य शरीरम्'। अत एव विष्णु-पुराणके 'विश्वरूपो यतोऽव्ययः' (वि० पु० १।२२।६८) 'द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च।' (वि० पु० १।२२।५३) इत्यादि वचनोंमें रूप शब्दका प्रयोग इस विषयकी पूर्ण-पुष्टि करता है। और अन्य प्रकार से शरीर शब्दका निर्वचन करना लोक एवं शास्त्रकी प्रसिद्धिसे बाहर हो जाता है।

और बुद्धिमान् पक्षपात रहित-विवेचकोंकी दृष्टिमें विशिष्ट और अद्वैत ये दोनों शब्दोंका समन्वयही नहीं हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकता, क्योंकि-अद्वैत नाम है-द्वैतके अभावका, जिसमें किसी भी प्रकारसे द्वैत न हो, वह है अद्वैत। भला! उस अद्वैतमें द्वैत रूप विशेषण लगाकर उसको कौन विशिष्ट बना सकता है? और वह अद्वैत विशिष्ट बन क्यों जायगा? यदि वह विशिष्ट बन जाता है तो उसको अद्वैत कहना ही व्यर्थ हो जाता है। और श्रुति, स्मृति, पुराण आदि किसी भी शास्त्रमें 'विशिष्टाद्वैत' ऐसा आनुपूर्वी-पद ही उपलब्ध नहीं है, इसलिये 'विशिष्टाद्वैत आत्मा' यह सिद्धान्त शास्त्रानुकूल नहीं है।

(शाङ्कर-सिद्धान्त)

आत्मासे अन्य, सजातीय या विजातीय या आत्मनिष्ठ (स्वगत) वस्तु कुछ भी पारमार्थिक सत्य नहीं है, स्वगत, सजातीय, विजातीय, भेदत्रयसे शून्य एकमात्र आत्मा ही पारमार्थिक सत्य है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

आत्मा (परमात्मा) चेतनत्वेन स्वसजातीय जीवोंसे, तथा अचेतनत्वेन विजातीय प्रधानादि जड़ पदार्थोंसे, तथा स्वगत कल्याण कारक गुणोंसे वस्तुतःभिन्न है, और आत्मासे अन्य सजातीय जीवादि पदार्थ वस्तुतः सत्य हैं।

(समीक्षा)

'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।' (बृ० ४।४।१९) 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति, यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्।' (बृ० ४।५।१५)

जो इस अद्वितीय ब्रह्मतत्त्वमें नाना यानी अनेकता देखता है, वह मृत्यु-परम्पराको प्राप्त होता है, जब अज्ञानावस्थामें द्वैतकी तरह होता है, तब अज्ञ-जीव अन्य होकर अन्यको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देखता है, जब उसे आत्मज्ञान प्राप्त होजाता है, तब उसके लिये सबकुछ आत्मा ही होजाता है, ऐसी अवस्थामें वह तत्त्वदर्शी पृथक् होकर किस इन्द्रिय से, किस वस्तुको कैसे देख सकता है? नहीं देख सकता, अर्थात् आत्मासे अतिरिक्त कुछ भी वस्तु न रहनेके कारण करण, कर्ता एवं कर्म, तथा द्रष्टा दृश्य एवं दर्शन रूपी त्रिपुटी-भेदका सर्वथा अभाव हो जाता है, इस श्रुतिके 'नानेव' 'द्वैतमिव' ये पद भी द्रष्टव्य हैं, इव शब्दके प्रयोगसे जगत्का नानात्व, तथा द्वैत-प्रतीति, भ्रान्ति जन्य है, तत्त्वतः एकत्व ही सत्य है, यह सिद्धान्त निर्विवाद सिद्ध होता है, अतएव 'एकत्वमनुपश्यतः' (यजुर्वेद-संहिता ४० ७) यह श्रुति स्पष्ट एकत्वदर्शनका अनुमोदन करती है। जब संम्पूर्ण विश्व ब्रह्मरूप एक-अभिन्न ही हो जाता है, तब उसमें जरा-सा भी लव-लेश भेद किस तरह रह सकता है? नहीं रह सकता। नानात्व-दर्शनका निषेध एकत्व-दर्शनमें ही पर्यवसित होता है। जो चित्, अचित् रूप शरीर विशिष्ट ब्रह्मके अन्तर्गत चित्-अचित्, एवं अन्तर्यामी रूप तीन-तत्त्वोंका भेदरूप सत्य-नानात्व स्वीकार करते हैं, उनके मतमें श्रुतिप्रतिपादित नानात्वका निषेध कैसे संगत हो सकेगा? सत्यका निषेध क्यों कर होगा?।

और 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति (तै० २।७।१) जब कोई भी मनुष्य इस अद्वितीय-विज्ञानघन-ब्रह्मतत्त्वमें थोडासा भी भेद करता है, उसको भय होता है, यह श्रुति भेददर्शनसे भयकी प्राप्ति प्रतिपादन करती है, अर्थात् 'अभयार्थीको भेददर्शन नहीं अभेद-दर्शन करना चाहिये, यह सूचन करती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत'* (छां० ३।३।१) यह श्रुति—

सर्वको ब्रह्मरूपसे एक-अभिन्न निश्चय कराकर मुमुक्षुको राग-द्वेषके अभाव द्वारा शान्ति समर्पण करती है। नानात्वके अनुसन्धानसे राग और द्वेष होता है, यह लोकप्रसिद्ध है, रागद्वेष वाला मनुष्य कैसे शान्त रह सकता है? तथा एकत्वके अनुसंधानसे राग-द्वेष कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।' (यजुर्वेद-संहिता ४०।७) यह श्रुति एकत्व दर्शनसे रागद्वेष रूपी मोह-शोकका

* सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति पूर्व भागे ब्रह्म 'तज्जलान्' इति च पदद्वयं विधेयसमर्पकम्। इदं सर्वं जगदुद्दिश्य ब्रह्मत्वं तदुत्पत्त्यादिमत्त्व च विधीयते। अत्र प्रथमेन विधिना सर्वस्य ब्रह्मत्वे बोधिते सर्वस्य कथ ब्रह्मत्व मित्याकाङ्क्षायां तदुपपादनाय 'तज्जलानिति' द्वितीयो विधिरारभ्यते। तस्माद्ब्रह्मणः सकाशाज्जायत इति तज्जम्, तस्मिन्नेव लीयत इति लम्. तेन अनिति प्राणितीत्यन्। जगत उत्पत्तिर्ब्रह्मणः सकाशादेव, लयश्च ब्रह्मण्येव, तथा चेष्टा च जगतो ब्रह्मणैव। सर्वस्य ब्रह्मैकरूपत्वानुसंधाने च नानात्वानुसंधानाभावेन रागद्वेषाभावाच्छान्तिः सुलभा। अर्थात् 'ब्रह्म' और 'तज्जलान्' यह दो पद विधेय समर्पक हैं, यानी इस सर्व जगत्को उद्देश्य करके उसमें ब्रह्मत्वका विधान सुना, तब यह सहज ही प्रश्न उठता है कि—सब जगत् ब्रह्म कैसे हो सकता है? उसके समाधानके लिये श्रुति स्वयं 'तज्जलान्' यह द्वितीय विधान करती है। अर्थात् यह जगत् ब्रह्मसे ही उत्पन्न होकर, ब्रह्ममें ही लीन होता है, और ब्रह्मसे ही सत्ता-स्फूर्ति सम्पादनकर चेष्टा करता है, इसलिये कार्य कारणका अनन्यत्व होनेके कारण यह जगत् ब्रह्मरूप है, इस प्रकार सर्वको ब्रह्मरूपसे अनुसंधान करनेपर तथा नानात्व (अनेकत्व) का अनुसंधान न होनेपर रागद्वेषका अभाव होनेसे शान्ति सुलभ हो जाती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभाव स्पष्टतः प्रतिपादन करती है। इसलिये नानात्व-दर्शनसे किसीको भी शान्ति मिल नहीं सकती है।

और विष्णुपुराणमें भेद-ज्ञानको मोह (भ्रान्ति) रूप कहा है, अतएव उसके परित्याग का भी विधान किया है-

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्,
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥
(वि० पु० २।१६।२३)

इस संसारमें जो कुछ है, वह सब एक आत्मा ही है, और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, मैं तू और ये सब आत्मस्वरूप ही है, अतः भेदज्ञान रूप मोह को छोड़।

अतः परमार्थतः किसी भी प्रकारसे भेद मानना शास्त्रानुकूल नहीं हो सकता।

(शांकर-सिद्धान्त)

वह शुद्ध अद्वितीय आत्मा निर्विशेष है, यानी जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध प्रभृति सकल सांसारिक-विशेष-धर्मोंसे अतीत है। अतएव वह ऐसा है, या वैसा है यानी अमुक गुण वाला तथा अमुक धर्मवाला है, इस प्रकार नहीं कह सकते। माया विशिष्ट-आत्मा तो सविशेष है, यानी सर्वज्ञत्वनित्यत्वव्यापित्वादि-विशेषोंसे युक्त है, अतएव उसका शक्ति-वृत्तिसे प्रतिपादन हो सकता है। परन्तु शुद्ध निर्विशेष आत्मा शक्तिवृत्ति का विषय नहीं है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

शुद्ध-निर्विशेष आत्मा है ही नहीं, आत्मा सविशेष ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, यानी वह सर्वज्ञत्वादि विशेष गुण वाला है, अतएव सर्वज्ञ है, नित्य है, इत्यादि शब्दोंसे उसका प्रतिपादन हो सकता है।

(समीक्षा)

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम' (छां० ६।२।१)

हे प्रियदर्शन! यह दृश्यमान निखिल जगत् स्वोत्पत्तिसे प्रथम एक एव अद्वितीय सद् ही था। यह श्रुति एक पदसे सजातीय भेदका, एव पदसे विजातीय-भेदका, तथा अद्वितीय पदसे स्वगत भेदका उस सत्तत्वमें निषेध करती है। अतएव यह श्रुति निर्विशेष-आत्मतत्वकी प्रतिपादिका है।

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' (ऐ० १।१)

'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' (बृ० १।४।१०)

इन श्रुतियोंके अनुरोधसे वह सत् आत्मा-ब्रह्मही है। आत्मासे सद् ब्रह्म पृथक् वस्तु नहीं है। सदेवेति यह श्रुति सत्पदसे अस्तितामात्र वस्तु-यानी जहाँ सामान्यकी पराकाष्ठा है, ऐसी निर्विशेष सन्मात्र वस्तुको कहती है। जगत्का मूल-कारण यदि सविशेष माना जाय, तो उसमें मूल-कारणता का सम्भव नहीं हो सकता, क्योंकि-सभी विशेष सामान्य पूर्वक होते हैं, सामान्यके विना विशेषका कथन नहीं बनता, यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है, अतः मूलकारणको सविशेष नहीं मान सकते, किन्तु निर्विशेष सामान्य-सन्मात्र ही मानना चाहिये। उस सद्वस्तुको आप अस्तित्वरूप धर्मसे भी सविशेष नहीं कह सकते, क्योंकि-यदि उसे अस्तित्वसे सविशेष माना जाय, तो वह सविशेष किस सामान्यसे निरूपित है, ऐसी आकांक्षा स्वतः उत्थित होती है, जिस सामान्यसे वह निरूपित होता है, उस सामान्यको ही हम अस्तिशब्दाभिधेय सन्मात्र मूल कारण मानते हैं। उस सामा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्यको फिर आप अनवस्थाभयसे सविशेष नहीं मान सकते, अतएव श्रुति-घटक सच्छब्दका अर्थ निर्विशेष सन्मात्र आत्माही है, यह निर्विवाद पन्था है।

'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' (मुं० १।१।५) यह श्रुतिभी निर्विशेष-ब्रह्मतत्त्वकी प्रतिपादिका है। इस श्रुतिमें पराविद्यासे प्राप्य तत्वका नाम अक्षर कहा है। न क्षरतीत्यक्षरम्' इस व्युत्पत्तिसे अक्षर शब्दका अर्थ अविनाशी है। उस अक्षर शब्दका अविनाशित्व (विनाशाभाव) प्रवृत्ति-निमित्त है, अतः प्रथमसे ही पराविद्याप्राप्यवस्तुका निषेध मुखसे उल्लेख करनेसे श्रुति उस वस्तुको निर्विशेष सूचित करती है। वह पराविद्याप्राप्य वस्तु कैसी है? ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति स्वयमेव उसका निषेधमुखसे वर्णन करती हुई निर्विशेष-तत्त्वका बडे जोरोंसे प्रतिपादन करती है-

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं,
यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ *
(मुं० १।१।६)

---

* अद्रेश्यं = प्रत्यक्षागोचरम्। अग्राह्यमनुमानाद्यगोचरं कर्मेन्द्रियागोचरं वा। अगोत्रं= अनामकम्। अवर्णं = नीलादिवर्णरहितम्। अचक्षुःश्रोत्र = ज्ञानेन्द्रिय-रहितम्। अपाणिपादं = कर्मेन्द्रियरहितम्। एवं चरणद्वयेन प्राप्यवस्तु निषेध-मुखेन प्रतिपादितम। यद्यपि तृतीयचरणे नित्यमित्यादिवर्णनमापाततो विधि-मुखेन भासते तथापि पर्यवसानं निषेधमुख एव। तदेवाह-नित्यं = कालतः परिच्छेदरहितम्। विभु = देशतः परिच्छेदरहितम्। सर्वगत = वस्तुतः परिच्छेद-रहितम्। अतो नात्र कश्चिद्धर्मो विधिमुखेन बोध्यते। दृश्यत्वादिविशेषाभा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह पराविद्याप्राप्यवस्तु प्रत्यक्ष प्रमाणका अविषय, तथा अनुमानादि-प्रमाणोंका अविषय एवं कर्मेन्द्रियका भी अगोचर है। नामसे तथा नीलादिरूपसे रहित है। ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियसे भी रहित है, इस प्रकार दो पादों से निषेध मुखद्वारा प्राप्यवस्तुका प्रतिपादन किया। यद्यपि तृतीयपादमें नित्यमित्यादिकोंका वर्णन विधिमुखसे है, ऐसा आपाततः भासमान होता है, तथापि उनका पर्यवसान निषेधमुखमें ही है। यही कहते हैं—नित्य यानी कालकृतपरिच्छेदका अभाव, विभु यानी देशकृतपरिच्छेदका अभाव, एवं सर्वगत यानी वस्तुकृत परिच्छेदका अभाव, इसप्रकार त्रिविध परिच्छेद रहित वस्तुका नित्य विभु एवं सर्वगत ये तीन पदोंसे बोध होता है। उस तत्त्वमें विधिमुखसे किसीभी धर्मका बोधन नहीं किया जाता है। 'दृश्यत्वादि विशेष-धर्म न होनेके कारण वह वस्तु ही न होगी' ऐसी असत्त्व शंका होनेपर श्रुति 'सुसुक्ष्मम्' ऐसा पद कहती है। वह वस्तु अतीव सूक्ष्म है यानी उसमें स्थूलत्व नहीं है, अतएव अदृश्य है। स्थूलत्व ही दृश्यत्वका प्रयोजक होता है। वह तत्त्व अनङ्ग, अगुण, एव सर्वात्मा; होनेके कारण उसमें

वात्तद्वस्तु नैव स्यादिति चेत्तत्राह-सुसूक्ष्मम् = स्थूलत्वरहितम्। दृश्यत्वे स्थूलत्वस्य प्रयोजकत्वात्। तदव्ययं = अनंगत्वादगुणत्वात्सर्वात्मकत्वाच्च तस्य स्वाङ्गापचयलक्षणः कोशापचयलक्षणो गुणद्वारको वा व्ययो न संभवति। भूतयोनिं = जगत्कारणम्। एतद्वाक्यीयविधिमुखप्रवृत्तिः 'जगत्कारणत्वादि-विशेषमारोप्य सविशेषवस्तुध्यानं निर्विशेषसाक्षात्कारोपाय एवेति' सूचयति। पूर्वोक्त-निषेधवाक्यपर्यालोचनेन 'जगत्कारणत्वादिविशेषवत्त्वेन यदेतद्धीरैर्दृश्यते तद्वस्तु वस्तुतो निर्विशेषमेवेति' तात्पर्यमवगम्यते। धीराः = धैर्यशालिनः, धैर्येणैवं क्रमेण निर्विशेषवस्तुसाक्षात्कारो भविष्यतीति बुद्धिदार्ढ्यम्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वाङ्गका अपचय (क्षय) रूप, कोश (खजाना) का अपचयके समान अपचयरूप, तथा गुण द्वारा अपचयरूप व्यय नहीं है। वह भूतोंका मूल यानी जगत्कारण है। यह वाक्य विधिमुखसे प्रवृत्त है, अतएव यह ऐसा सूचन करता है कि—जगत्कारणत्वादि विशेषका आरोप करके सविशेषवस्तु (माया विशिष्ट ईश्वर) का ध्यान, निर्विशेष-शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कारका उपाय है। पूर्वके निषेध वाक्योंके पर्यालोचनसे यह तात्पर्य निश्चित होता है कि—जगत्कारणत्वादि-विशेषरूपसे जो वस्तु धीर लोग जानते हैं, वह वस्तुगत्या निर्विशेष ही है। धीरनाम धैर्यवालोंका है। सविशेष वस्तुके ध्यानद्वारा निर्विशेष वस्तुका साक्षात्कार क्रमशः हो जायगा, ऐसी दृढ बुद्धिका नाम ही यहाँ धैर्य है।

और 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० २।१।१) यह श्रुति भी निर्विशेष वस्तुकी प्रतिपादिका है। यहाँ भी मिथ्यात्वके अभावका नाम सत्य है। जडत्वके अभावका नाम ज्ञान है, एवं त्रिविधपरिच्छेदरूप-अन्तके अभावका नाम अनन्त है। तथाच भावभूत पृथक् धर्मका आश्रय न होनेके कारण वह ब्रह्मतत्त्व सर्वधर्मविनिर्मुक्त निर्विशेष सिद्ध होता है। ब्रह्मशब्द भी निर्विशेषताका परिचायक है 'बृंहणात्सर्वव्यापनाद्ब्रह्म' सर्वमें जो व्यापक है, उसे ब्रह्म कहते हैं। यह नियम है कि—सामान्यसे ही विशेष व्याप्त होते हैं, विशेषसे सामान्य व्याप्त नहीं होता। यदि ब्रह्मके स्वरूपभूत बृहत्त्वको विशेषरूप माना जाय तो उस विशेषका निरूपण करनेवाला कोई सामान्य मानना होगा, उस सामान्यके माननेपर वह सविशेष ब्रह्मसे व्याप्त न होगा। ऐसा होनेपर ब्रह्ममें सर्व व्यापकता ही न रहेगी, अतः बृहत्त्वको कदापि विशेषरूप नहीं मान सकते, किन्तु उसे निर्विशेष ही मानना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और 'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ० ४ ४।२०) यह अनेकाकारका निषेधकवाक्य, तथा 'उदरमन्तरं कुरुते' (तै० २। ७।१) यह सकल भेद निषेधक वाक्य, तथा 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० ६।११) यह निखिल गुण-निषेधक वाक्य, तथा 'एकमेवाद्वितीयं' (छां ६।२।१) यह द्वितीयमात्रका निषेध वाक्य भी निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वका बोधक है।

और गीता भी निर्विशेष ब्रह्मका प्रतिपादन करती है। 'अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः। (गी० १३।३१) इस श्लोकमें अनादित्वका अर्थ है-मूल कारणका अभाव, यानी जो सबका मूल है, उसका मूल कोई नहीं। निर्गुणत्व यानी जिसमें सकल-गुणोंका अभाव है।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।'
(गी० १३।१९)

वह ब्रह्म आसक्तिरहित और गुणोंसे अतीत हुआ भी अपनी योगमाया द्वारा सबको धारण-पोषण करनेवाला एवं गुणोंका भोगनेवाला प्रतीत होता है।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।'
(गी० १३।१९)

हे अर्जुन! निखिल विकार और गुण प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए हैं, ऐसा तू जान।

इस प्रकार विष्णुपुराण भी बड़े जोरोंसे निर्विशेष-ब्रह्मःतत्त्वका प्रतिपादन करता है, जैसे—

यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम्।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम्।'
(वि० पु० ६।५।६६)

जो तत्त्व अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप एवं पाणि-पादादिसे शून्य है, तथा जो व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, तथा स्वयं कारण-हीन है।

जगत्कारणत्व भी उसमें वास्तविक नहीं है, क्योंकि-जगत् मिथ्या है। अतएव कहा है—'विज्ञानं परमार्थो हि द्वैतमिथ्यात्वदर्शिनः। (वि० पु० २।१४।३१) द्वैत प्रपञ्च को मिथ्या रूपसे देखनेवालोंके लिये एक-मात्र विज्ञान ही परमार्थतत्त्व है।

प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥
(वि० पु० ६।७।५३)

जिसमें सम्पूर्ण सजातीयादि-भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र तथा वाणीका अविषय है, तथा जो स्वयं ही अनुभव करने योग्य है, वही ब्रह्मज्ञान कहलाता है।

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः।
तदेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥
(वि० पु० १।२।६)

जो परमार्थतः (वास्तवमें) अतिनिर्मल (सकल-उपाधि विनिर्मुक्त) ज्ञानस्वरूप है। किन्तु वह भ्रान्तिज्ञान-वश ज्ञातृ-ज्ञेयादि नाना पदार्थरूपसे प्रतीत होता है। इस श्लोकमें यह स्पष्ट कहा है कि-वस्तुतः ब्रह्म, ज्ञान स्वरूप है, उसमें जो अर्थ स्वरूपका यानी ज्ञानभिन्न-ज्ञेयस्वरूप का तथा ज्ञातृस्वरूपका दर्शन है, वह अवास्तविक है, भ्रान्तिजन्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'निर्विशेषब्रह्मवाद' ब्रह्मसूत्रकार भगवान् वेदव्यासजी को भी सम्मत है। अतएव कहा है—'न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि।' (ब्र० सू० ३।२।११)।

स्थानमुपाधिः। परस्य = ब्रह्मणः उभयलिङ्गं = सविशेषनिर्विशेषलिङ्गं स्वभावतस्तु नास्त्येव परन्तु स्थानतोऽपि नास्ति, यतः सर्वत्र 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' (क० ३।१५) इत्यादिश्रुतिष्वपास्तसमस्तविशेषमेव ब्रह्मोपदिश्यते इति तदर्थः।

उस परब्रह्ममें सविशेषत्व एवं निर्विशेषत्व उभयरूपत्व वस्तुतः तो है ही नहीं, किन्तु उपाधिसे भी नहीं है। क्योंकि—सभी शाखाकी श्रुतियोंमें समस्त विशेष रहित ब्रह्मतत्व का ही उपदेश किया जाता है। अयंभावः—न तावत्स्वतः परस्य ब्रह्मण उभयरूपत्वं संभवति, पारमार्थिकसत्यस्य वस्तुनो द्वैरूप्यायोगात्। न ह्येकमेव वस्तु परमार्थतः एकदा तद्वत्तदभाववच्च दृष्टं, नाप्युपाधितः परस्य तात्त्विकमुभयरूपत्वं युक्तं, अग्निसंयोगमात्रेण जलस्योष्णस्वभावत्वादर्शनात्। तस्मादेकरूपं ब्रह्म। तदप्येकरूपत्वं निर्विशेषत्वमेव, यतः सर्वत्र वेदान्तेषु ब्रह्मपरेषु 'अशब्दमस्पर्शमि' त्यादिषु सविशेषत्वनिरासेन ब्रह्मोपदिश्यते, तस्मान्निर्विशेषमेवाखण्डैकरसंब्रह्म।

यह तात्पर्य है परब्रह्ममें स्वतः उभयरूपत्वका संभव नहीं है, क्योंकि—पारमार्थिक—सत्य वस्तुमें द्वैरूप्यका योग नहीं हो सकता। एक ही वस्तु एक ही समयमें परमार्थसे विशेषवत् तथा विशेषाभाववत् देखनेमें नहीं आती। एवं उपाधिसेभी पर ब्रह्ममें तात्त्विक—उभयरूपत्व युक्त नहीं है। जिस प्रकार अग्निसंयोगमात्रसे जलका उष्णस्वभाव देखा नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाता। अर्थात् जल का तो शीतस्वभाव है, अग्निसंयोगसे उसमें उष्णत्वका आरोपमात्र होता है, इतने मात्रसे शीत-स्वभावकी निवृत्ति नहीं होती। इसलिये ब्रह्म एकरूप ही है, उसका वह एकरूपत्व, निर्विशेषत्व ही है। क्योंकि-सभी 'अशब्दमस्पर्श' इत्यादि-उपनिषदोंके वचनोंमें, सविशेषत्वके निरास द्वारा ही ब्रह्मका उपदेश दिया जाता है, इस लिए निर्विशेष-अखण्ड एकरस ही ब्रह्म है। अत एव परमार्थतः ब्रह्म में निर्विशेषशब्दवाच्यत्व तथा अद्वैतादिशब्दवाच्यत्व भी नहीं हैं। अतएव दक्षस्मृतिमें कहा है—

न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम्।

अन्यत्र भी कहा है—

केचिदद्वैतमित्याहु द्वैतञ्चापि तथाऽपरे।
समं तत्त्वं न जानन्ति, द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥

अर्थात् न वस्तुतः द्वैत है, और न द्वैतका अभावरूप अद्वैत है, परमार्थतः वह द्वैताभावोपलक्षित-विशुद्ध-अखण्ड-एक रस है। कुछ लोग द्वैत का वर्णन करते हैं तो कुछ लोग अद्वैत का। परन्तु वे मिथ्यावावदूक लोग-द्वैताद्वैतसे रहित सम-अखण्डैकरस-निर्विशेष-तत्त्वको नहीं जानते हैं।

तथा च सर्वविशेषरहित ही शुद्ध ब्रह्मतत्त्व है, संसार में जितने भी विशेष-गुण-जात्यादि प्रतीयमान हैं, वे सब अवास्तविक हैं।

और भी बादरायणमुनि व्यासने कहा है-'आह च तन्मात्रम्'-[ब्र० सू० ३।२।१६]

आह च श्रुतिश्चैतन्यमात्रं विलक्षणरूपान्तररहितं निर्विशेषं ब्रह्म-स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन

२

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं वा अरेऽयमात्मानन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ' (बृ० ४।५।१३) इति। एतदुक्तं भवति-नास्यात्मनोऽन्तर्बहिर्वा चैतन्यादन्यद्रूपमस्ति चैतन्यमेव तु निरन्तरमस्य स्वरूपम्। यथा सैन्धवघनस्यान्तर्बहिश्च लवणरस एव निरन्तरो भवति न रसान्तरं तथैवेति।'

श्रुति भी उस ब्रह्मतत्त्वको विलक्षण-अन्य (अनात्म) रूपसे रहित निर्विशेष चैतन्यमात्र प्रतिपादन करती है, उस श्रुतिका भावार्थ यह है-जैसे नमकका समग्रडला बाहर और भीतर निरन्तर एकरस (लवणरस) है, अन्तर एवं बाहर उसमें अन्यरस नहीं है। तद्वत् अरे शिष्य! यह प्रत्यक्ष समग्र आत्मा बाहर और भीतर निरन्तर चैतन्यरूप है, उसमें बाहर और भीतर चैतन्यसे अन्यरूप नहीं है। चैतन्य-प्रज्ञानघन ही उसका शाश्वतिक अखण्डस्वरूप है।

पूर्वोक्त-सूत्रकी पुष्टिके लिये अन्यसूत्र भी कहते हैं—

'दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते' (ब्र० सू० ३।२।१७)।

दर्शयति श्रुतिः पररूपप्रतिषेधेनैव ब्रह्म, निर्विशेषत्वात्-'अथात आदेशो नेति नेति' (बृ० २।३।६) इति 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' (के० १।३) यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' (तै० २।४।१) इत्येवमाद्या। वाष्कलिना च वाध्वः पृष्टः सन्नवचनेनैव ब्रह्म प्रोवाचेति श्रूयते-'स होवाचाधीहि भो इति तूष्णीं बभूव तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच, ब्रूमः खलु त्वं तु न विजानासि उपशान्तोऽयमात्मा।' तथा स्मृतिष्वपि परप्रतिषेधेनैवोपदिश्यते—ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्तन्नासदुच्यते ॥' (गी० १३।१२) इत्येवमाद्यासु। तथा विश्वरूपधरो नारायणो नारदमुवाचेति स्मर्यते—माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद। सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं मां ज्ञातुमर्हसि ॥ इति।

पररूप (अनात्मरूप) के प्रतिषेध द्वारा श्रुति निर्विशेष-ब्रह्मका प्रतिपादन करती है–यही आदेश है कि–वह मूर्तामूर्त यावत् द्वैत-प्रपञ्चसे नितान्त पृथक् है, द्वैत-प्रपञ्चकी गन्ध भी उसमें नहीं है। वह तत्त्व विदित यानी ज्ञानीय-विषय-तासे भी पृथक् है, अर्थात् अद्वैत-ब्रह्ममें वस्तुतः ज्ञातृज्ञेयभाव न होनेके कारण उस एकरस ब्रह्ममें विषयविषयिभावका संभव नहीं हो सकता, अतएव वह विदित नहीं है। आत्मस्वरूप होनेके कारण उसे 'अविदित' भी नहीं कह सकते, क्योंकि-वह तो साक्षात्–अपरोक्ष है, अतः वह अविदितसे भी पृथक् है। मनके साथ तमाम वाणियाँ उसे न प्राप्त होकर लौट आती हैं, अर्थात् वह अवाङ्मनसगोचर है। एक समय वाष्कलिने बाध्वमहर्षिसे ब्रह्मका शुद्ध–स्वरूप पूछा–बाध्वमह-र्षिने कुछ न कह कर ही उसका मौन द्वारा स्वरूप बतलाया। परन्तु वाष्कलि न समझा। द्वितीयवार एवं तृतीयवार भी वही प्रश्न किया। तब बाध्व महर्षि कहने लगे कि-हे वाष्कलि मैंने मौनद्वारा उसका शुद्ध–स्वरूप बतला दिया, परन्तु तूने नहीं जाना, अरे! उस आत्माका शुद्ध स्वरूप सर्वप्रपञ्चातीत, मनवाणीका अविषय एवं स्वसंवेद्य है। तथा गीता आदि स्मृतियोंमें भी अनात्मरूपके प्रतिषेध द्वारा ही उस तत्त्वका उपदेश दिया गया है। अतएव भगवान् गीतामें कहते हैं–हे अर्जुन! मैं अब उस तत्त्वको कहता हूँ, कि जिसे जान लेनेसे अमृत अर्थात् मोक्ष मिलता है। वह अनादिमत् है, यानी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदिमद्-कार्य नहीं है। शुद्ध पर ब्रह्मरूप है। तथा उसे विद्वान् लोग न सत् (मूर्त-प्रपञ्च) रूप कहते है, और न असत् (अमूर्तप्रपञ्च) रूप ही यानी वह मूर्तामूर्त-यावत्प्रपञ्च की विशेषतासे रहित निर्विशेष चिन्मात्र है।

तथा विश्वरूपधारी नारायण भगवान् देवर्षि-नारद जीसे एक-समय कहने लगे कि-हे नारद! जो तू मुझको सकल-भूतोंके गुणोंसे युक्त देखता है, वह सब मेरी माया है। वास्तवमें मैं ऐसा नहीं हूँ, किन्तु मैं शुद्धस्वरूपसे माया-तीत एवं भूतातीत हूँ, अतः मुझको मायिकरूपसे युक्त नहीं जानना चाहिये।

इसप्रकार सकल वेदादि-शास्त्रमें निर्विशेषतत्त्वका प्रचुर एवं स्पष्ट प्रतिपादन किया है, लेख-विस्तार भयसे उन सबका यहाँ प्रदर्शन नहीं करते हैं, इतने मात्रसे ही बुद्धिमान् जिज्ञासु यथार्थतत्त्वका स्वरूप समझ सकते हैं। पूर्वोक्त-प्रचुर प्रमाण एवं युक्ति आदि होनेपर भी 'निर्विशेष-तत्त्व कोइ वस्तु ही नहीं है, इसमें प्रमाण कुछ नहीं, ऐसा कहना केवल साहस मात्र है। तथा शास्त्र-रहस्यकी अनभिज्ञताका परिचय देना मात्र है।

(शांकर-सिद्धान्त)

वह परमात्मा निर्गुण है, उसमें सर्वज्ञत्वादि, कल्याण कारकत्वादि गुण वस्तुतः नहीं हैं, क्योंकि-वह तो स्वयं कल्याणस्वरूप है, अतः उस अखण्ड-एक-रसमें भेदमूलक-गुण-गुणिभाव किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकता।

(रामानुज-सिद्धान्त)

परमात्मा स्वभावसे ही सर्वज्ञत्वादि अनेक कल्याण कारक गुणगण का आश्रय है, उसमें अल्पज्ञत्वादि प्राकृत हेयगुण नहीं हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समीक्षा)

परमात्माका स्वरूप एक-मात्र श्रुति से ही समधिगम्य है, अतः श्रुति वचनके अनुसार ही उसके स्वरूपका अङ्गीकार करना चाहिये, श्रुति स्पष्ट कहती है कि-वह परमात्मा 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० ६।११) यह श्रुति, सामान्यतः शुभाशुभ निखिल गुणोंका निषेध करती है। यद्यपि 'यः सर्वज्ञः' (मुं० १।१।९) 'सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इत्यादि सगुण-श्रुति सर्वज्ञत्व, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, जगत्सर्गस्थितिलयकर्तृत्व, आदि गुणोंका परमात्मामें प्रतिपादन कर उसको सगुणरूपसे निर्देश करती है, परन्तु वह सगुणरूप शुद्धपरमात्मा का नहीं है, किन्तु मायाविशिष्ट ईश्वर का है। इस विषयको 'मायिनन्तु महेश्वरम्' (श्वे० ४।१०) यह श्रुति स्पष्ट समर्थन करती है। अतएव सगुण-श्रुतियाँ, मायासे समारोपित सर्वज्ञत्वादि-गुणोंकी प्रतिपादिका हैं। वास्तविक-गुणोंका प्रतिपादन नहीं करतीं।

और 'हेयगुणोंका जिसमें अभाव है, वह निर्गुण है' इस प्रकार संकोच करनेमें कुछ प्रमाण नहीं है, क्योंकि -गुणशब्द सामान्यतः प्रवृत्त है, अतः निर्गुण शब्द परमात्मामें सामान्यरूपसे सकल गुणोंका निषेध करेगा।

यदि परमात्मामें वास्तविक गुणोंको-स्वीकार करके हेयगुणोंके अभाव मात्रसे निर्गुण श्रुतिका समर्थन करोगे तो बाह्येन्द्रियसे ग्राह्य-रूपरसादि-गुणोंके अभावमात्रसे पृथिव्यादि भूतोंको भी निर्गुणपदसे प्रतिपाद्य मानना चाहिये। ऐसा मानने पर परमात्माके शुद्ध स्वरूपका प्रतिपादन करने वाली निर्गुण-श्रुतिने चित्तचमत्कारक अपूर्व-अधिक-अर्थका कुछ भी नहीं प्रतिपादन किया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और 'प्राप्तौ सत्यां निषेधः' अर्थात् निषेध प्राप्ति-पूर्वक होता है। परमात्मामें गुणोंकी प्राप्ति-प्रत्यक्ष है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि-स्वयं परमात्मा ही प्रत्यक्षका अविषय है, अतः अनुमानसे उसमें गुणोंकी प्राप्ति कहनी होगी, क्योंकि जगत्सृष्टि-स्थिति-लयका कर्ता परमात्मा अनुमानसे जाना जाता है, अतः उस परमात्मामें जगत्सृष्टिके लिये उपयुक्त सर्वज्ञत्वादि गुणोंका अनुमान बन सकता है, परन्तु हेय गुणों की तो प्राप्ति अनुमानसे भी नहीं है। जब हेय-गुणोंकी उसमें प्राप्ति ही नहीं है, तो उनका निषेध 'निर्गुण'-श्रुति क्यों करने लगी? अतः हेयगुणों की प्राप्ति न होनेके कारण निर्गुण-श्रुति हेयगुणोंका निषेध नही कर सकती, किन्तु अनुमानसे प्राप्त माया-कल्पित सर्वज्ञत्वादि-गुणोंका ही निर्गुण श्रुति निषेध करती है, ऐसा मानना युक्ति संगत है।

और परमात्मा (ईश्वर) में रहे हुए सर्वज्ञत्वादि-कल्याणकारक गुण, जीवोंके कल्याण के लिये हैं, और अविद्याविशिष्ट का नाम जीव है, अतः जीवकी कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूपा-सांसारिक-अवस्था अविद्या कल्पित मानी जाती है, इसलिये जैसे स्वप्नरथमें कल्पित गति-क्रियाके लिये उपयुक्त रथ कल्पित माना जाता है, तद्वत् अविद्या-कल्पित-जीवके लिये उपयुक्त सर्वज्ञत्वादि गुण भी ईश्वरमें कल्पित ही मानने चाहिये, कल्पितके लिये कल्पित ही उपयुक्त होता है। 'यादृशी शीतला देवी तादृशः खरवाहनः' यह प्रसिद्ध है।

और 'सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व, सर्वज्ञातृत्व, इत्यादि श्रुति-प्रतिपादित-गुण भी आत्मा (परमात्मा) के स्वाभाविक गुण नहीं हैं, क्योंकि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा
धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव।
(बृ. १।५।३)।

इत्यादि श्रुति, काम-संकल्पादिकोंको स्पष्ट ही अविद्यामय मनोवृत्तिविशेष रूप ही कहती है, अत-एव सर्व-विषयक ज्ञातृत्वादि भी मायिक-वृत्ति विशेष ही है, अतः सत्यकाम-त्वादि परमात्मा के स्वाभाविक गुण कदापि नहीं हो सकते। किन्तु मायोपाधिक ही मानने योग्य हैं।

अतएव 'परमात्माका शुद्ध-स्वरूप अशेष-विशेष-गुण-विनिर्मुक्त-निर्गुण है' यह सिद्धान्त श्रुति एव तर्कसे अनुमोदित है, इस विषयमें बुद्धिमान् विवेचकोंके दृष्टिकोणमें कुछ भी सन्देह नहीं रह सकता।

(शांकर-सिद्धान्त)

आत्मा स्वयं हि ज्ञानस्वरूप है, अतएव उसमें ज्ञान-रूप भी गुण नहीं रह सकता।

(रामानुज-सिद्धान्त)

आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप होने पर भी वह ज्ञानरूप-नित्य-गुणका आश्रय है। और वह गुणरूप ज्ञान स्वरूपभूत-ज्ञानसे भिन्न है।

(समीक्षा)

'विज्ञानघनः' (बृ. २।४।१२) 'सत्यंज्ञानम्' (तै. २।१) 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृ. ३।९।२८) इत्यादि श्रुतियोंके अनुरोधसे वह आत्मा (परब्रह्म) ज्ञान स्वरूप ही निश्चित होता है, 'ज्ञान' उसका गुण है, उसमें रहता है' ऐसे मन्तव्यमें कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और उस अद्वितीय-आत्मस्वरूप ब्रह्ममें भेदमूलक धर्म-धर्मिभाव एवं विषयविषयिभाव परमार्थतः न होनेके कारण वह आत्मा वस्तुगत्या ज्ञानका आश्रय (ज्ञाता) एवं ज्ञानका विषय (ज्ञेय) भी नहीं हो सकता।

और वह आत्मामें रहनेवाला ज्ञान, नित्य गुण नहीं है, क्योंकि-वह ज्ञान (वृत्तिरूप) शब्दादिकी तरह गुण ही नहीं है, किन्तु छिदादिकी तरह क्रिया है। और जो जो क्रियाएँ होती हैं, वह सभी अनित्य ही होती हैं, इसलिये इस ज्ञान-क्रियाको भी अनित्य ही मानना चाहिये, ऐसा माननेसे ही 'असुकं ज्ञानमुत्पन्नम्' 'अमुकं ज्ञानं नष्टम्' इत्यादि लौकिक-व्यवहार संगत होता है। अतएव उत्पत्ति-विनाशवाली वह ज्ञानक्रिया निष्क्रिय, निर्विकार, निराकार, नित्य, आत्माका स्वभाविक धर्म कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती। किन्तु वह ज्ञानक्रिया, सक्रिय, विकारी, परिणामी मनका ही स्वाभाविक धर्म है, भ्रान्तिसे निर्विकार आत्मामें प्रतीत होती है, ऐसा मानना ही श्रुति, युक्ति, एवं अनुभव संगत है।

(शांकर-सिद्धान्त)

परमात्मा स्वस्वरूपसे कूटस्थ नित्य एवं अद्वितीय है, अतः वह ब्रह्माद्वैत कहा जाता है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

परमात्मा स्वस्वरूपसे तो कूटस्थ नित्य है, किन्तु चिदचिद्रूपशरीरविशिष्टरूपसे परिणामी नित्य भी है। और वह विशिष्टरूपसे ही अद्वितीय है। अतएव ब्रह्माद्वैत, प्रकाराद्वैत नहीं है, किन्तु प्रकारी (विशिष्ट) अद्वैत है। क्योंकि-ब्रह्मरूप प्रकारीमें प्रकार (विशेषण)रूपसे रहे हुए जीव एवं जडोंके अनेक होने पर भी प्रकारी ब्रह्मके एक होनेसे प्रकारी ब्रह्मही अद्वैत है, जीवादि प्रकारोंका अद्वैत नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(समीक्षा)

जब परमात्मा वस्तुतः स्वरूपसे कूटस्थ नित्य है, तो उसको किसी भी प्रकारसे वस्तुतः परिणामी-नित्य नहीं मान सकते। यदि वस्तुतः किसी भी रूपसे परिणामी वह हो जाता है तो वस्तुतः कूटस्थ-नित्य रह ही नहीं सकता। कूटस्थ नाम अपरिणामीका है, वह किसी भी रूपसे परिणामी क्यों होने लगा ?।

अतएव आचार्य श्री शंकरस्वामीजी ने कहा है–

'स वा एष महानज आत्माऽजोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म' (बृ. ४।४।२५) 'स एष नेति नेत्यात्मा' (बृ. ३।९।२६) 'अस्थूलमनणु' (बृ. ३।८।८) इत्याद्याभ्यः सर्वविक्रियाप्रतिषेध–श्रुतिभ्यो ब्रह्मणः कूटस्थत्वावगमात्। न ह्येकस्य ब्रह्मणः परिणामधर्मत्वं तद्रहितत्वं च शक्यं प्रतिपत्तुम्।, (शारीरक–भाष्य २।१।१४) अर्थात् वह यह आत्मा, महान्, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत अभय एवं ब्रह्मरूप है। वह यह आत्मा नेति नेति अर्थात् मूर्तामूर्त–द्वय–प्रपञ्च रहित है, वह स्थूलत्व –अणुत्वादि दृश्य धर्मोंसे रहित है, इत्यादि–श्रुतियाँ–जो समस्त–विकारोंका प्रतिषेध करती हैं, इन श्रुतियोंके द्वारा ब्रह्म कूटस्थ नित्य ही अवगत होता है। एक ही ब्रह्म–को वस्तुतः परिणाम धर्मवाला तथा उससे रहित–कूटस्थरूप नहीं मान सकते।

और 'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' (छां. ६।१।३) इत्यादि श्रुतियोंके अनुरोधसे उस परमात्माको विशिष्टरूपसे अद्वितीय भी नहीं मान सकते। क्योंकि–'येनाश्रुतं' यह श्रुति एक के ज्ञानसे सर्वके ज्ञानकी प्रतिज्ञा करती हुई

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहती है कि-उस एक अद्वैत-तत्त्वको जानो, उसको जान लेने पर सब कुछ जाना जायगा। इस प्रतिज्ञा का समर्थन तभी ही हो सकता है कि-जब सकल चराचर जगत् का तत्त्व (वास्तविक-स्वरूप) अद्वैत-ब्रह्महो हो। जैसे घट, शराव उदञ्चन, आदिका तात्त्विक स्वरूप मृत्तिका है, अतएव मृत्तिकाके जान लेने पर उन घटादिकोंके असली स्वरूप का ज्ञान हो जाता है कि-यह घटादि असलमें मृत्तिका ही है, उनका नाम-रूपात्मक विकार कहने मात्रके हैं, वस्तुतः कुछ नहीं। अतएव श्रुति-भगवती स्वयं इस प्रतिज्ञाका समर्थन करने के लिये मृत्पिण्ड का दृष्टान्त-ग्रहण करती है-

'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (छा. ६।१।४)

अर्थात् हे प्रियदर्शन पुत्र! (उद्दालक महर्षि पुत्र श्वेतकेतुके प्रति कहते हैं) जिस प्रकार एक मृत्पिण्डके जान लेने पर उससे बने हुए उसकी सत्ता ग्रहणकर विभिन्न नामरूपसे प्रतीत होनेवाले-घट-शरावादि सब कार्य मृन्मयरूपसे विज्ञात हो जाते हैं। उन कार्योंकी वास्तविकी-अपनी सत्ता कुछ न होने के कारण वे केवल वाणीका विलास मात्र हैं, विभिन्न नामोंसे कहे जा सकते हैं. और विभिन्न आकृतिओंसे प्रतीत भी हो सकते हैं, परन्तु उनमें वस्तुतः एकमात्र मृत्तिका ही सत्यवस्तु है। घटादि-कार्यवर्ग-सत्य नहीं होता।

इस श्रुतिके वाचारम्भण शब्दसे सिद्धान्तमें यह निश्चय होता है कि-ब्रह्मव्यतिरिक्त निखिल कार्य समुदायकी स्वतः सत्ता कुछ भी नहीं है, अतएव उस कार्य-समुदाय का तत्त्व स्वतः-सिद्ध सद्ब्रह्म होनेके कारण उस एकके ज्ञानसे उस सबके तत्त्व (स्वरूप) का ज्ञान हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथा च जीवादि-प्रकारों (विशेषणों) का अद्वैत नहीं मानने पर इस श्रौत-प्रतिज्ञा का समर्थन किसीभी रीतिसे नहीं हो सकता। और जीवादि-प्रकारोंका अद्वैत निरूपण करनेके लिये खास रूपसे प्रवृत्त 'अयमात्मा ब्रह्म (माण्डू० २।) 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ० १।४।१०) 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' (मुण्ड० ३।२।९) इत्यादि श्रुतियोंका विरोध तो प्रत्यक्ष ही है। अतएव प्रकाराद्वैत (केवलाद्वैत) ही श्रौत एवं यौक्तिक सिद्धान्त निश्चित होता है।

(शांकर सिद्धान्त)

परमात्मा ही मायारूप उपाधिसे ईश्वर है, एवं अविद्यारूप उपाधिसे जीव है, और निखिल जड़वर्ग प्रतिभासिक मिथ्या है, अतएव अशेष-उपाधि-विनिर्मुक्त परमार्थतः तत्त्व एक ही है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

परमात्मा ही ईश्वर है। परमात्मा का शरीर रूप जड़वर्ग एवं जीववर्ग, उससे भिन्न ही है, अतएव चित् (जीव) अचित् (जड़) और ईश्वररूप परमार्थतः तीन तत्त्व हैं।

(समीक्षा)

'मायातीत शुद्ध परमात्मा ही जगत्सृष्ट्यादिका कर्ता ईश्वर है' ऐसा माननेमें कुछ प्रमाण एवं युक्ति उपलब्ध नहीं होती, प्रत्युत श्रुति-युक्तियोंका विरोध उपलब्ध होता है। और 'मायाविशिष्ट परमात्मा जगत्सृष्ट्यादि का कर्ता ईश्वर हैं' इस सिद्धान्तमें तो—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मायां तु प्रकृतिं विद्यात्, मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु, व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥*
(श्वे० ४।१९)

यह श्वेताश्वतर-शाखाकी श्रुति ही अकाट्य प्रमाणरूप से उपलब्ध होती है। 'इससे मायावाला ही महेश्वर सर्व-विश्वका सञ्चालक है' यह स्पष्ट निःसन्देह सिद्ध होता है।

और जब मायातीत-परमात्मा स्वतः कूटस्थ, अचल, एवं निष्क्रिय है, तब उसमें जगत्सर्जनानुकूल-क्रिया क्यों होगी? उस अपरिच्छिन्न-एकरस-अखण्ड ठोस वस्तुमें क्रिया कहाँसे आयेगी? जब उसमें क्रिया ही न होगी, तब क्रियारहितसे जगत्की सृष्टि कैसे बनेगी? संकल्प से होगी? परन्तु संकल्प भी एक प्रकारकी मानसिक-क्रिया विशेष ही तो है। और जगत्सृष्ट्यादिके कर्तृत्वादि-विना वह ईश्वर ही क्यों कहलायेगा? इन सब दूषणों के परिहारार्थ 'मायिनं तु महेश्वरम्' यह श्रौत-सिद्धान्त अवश्य मानना चाहिये×। माया के द्वारा वह परमात्मा क्रिया रहित होनेपर भी क्रियावान् की तरह, अकर्ता होने पर भी कर्ता की तरह प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, किन्तु माया के द्वारा वह एक ही विश्वके अनेक जीवादि रूपोंसे प्रतीत होता है। इस विषयको यह ऋग्वेद संहिता की श्रुति भी स्पष्ट कहती है—

---

* मायाको तुम प्रकृति यानी समस्त विश्वका परिणामी-उपादान कारण जानो और मायाके अधिष्ठाताको महेश्वर समझो, उसके अवयवोंसे ही यह समस्त विश्व व्याप्त है।

× यह मेरा पूर्ण-विश्वास एवं दृढ़तम निश्चय है कि—आचार्य श्री शंकरस्वामीके सभी सिद्धान्त श्रुति-स्मृति-पुराणादि शास्त्रके एवं शास्त्रानुमोदित तर्कके सर्वथा अनुकूल हैं। भगवान् श्री वेदव्यासजीने पुराणादिकोंके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋ० ४।७।३३।१८)

यहां इन्द्र नाम परमात्माका है, अर्थात् वह एकही परमात्मा मायाशक्तिके द्वारा अनेक रूपसे प्रतीत होता है।

और जड़वर्ग एवं जीववर्ग परमात्मासे वस्तुतः भिन्न नहीं हो सकता, इस विषयके श्रुति-स्मृति पुराण आदि शास्त्रोंके अनेक वाक्य समुपलब्ध हैं। जैसे—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

(ऋग्वेद-संहिता १।८९।१०)

इस मन्त्रमें अदिति नाम मायाविशिष्ट परब्रह्मका है। द्यौ, (स्वर्ग) अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, विश्वदेव, पञ्चजन (गन्धर्व, पितर, देव, असुर, और निषाद इन पांचोका नाम पञ्चजन है) उत्पन्न विश्व, तथा भविष्यमें उत्पन्न होनेवाला विश्व भी वह मायावी-अदिति परब्रह्म ही है।

त्वं स्त्री पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

(अथर्ववेद-संहिता १०।८।२७)

इस मंत्रमें वेदभगवान् परमात्माकी सर्वरूपताका प्रतिपादन करते हैं। हे परमात्मदेव! तूही स्त्री है, तूही पुरुष

द्वारा जो जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, वे सभी सिद्धान्त ही शाङ्कर सिद्धान्त हैं। यह मैं घरके एक कोणेमें बैठकर नहीं कहता, किन्तु संसारके समस्त बुद्धिमान्-विद्वानोंके समक्ष दोनों हाथ उठाकर बड़े जोरोंसे कहता हूं। इस विषयका विचार करने के लिये मैं हरदम उद्यत रहता हूं। इस विषयमें विप्रतिपन्न-सज्जनके लिये मेरा विशाल मैदान सदा के लिये खुला एवं साफ रहता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है, तूही कुमार है एवं तूही कुमारी और लकड़ी-पकड़कर चलने वाला वृद्ध भी तूही है, अधिक क्या कहूँ? तूही सर्वरूपसे उत्पन्न होकर सभी तरफ भास रहा है।

'इदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा
इमानि भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा।'
(बृ० २।४।६)

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।' (बृ० २।४।५) इस 'एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञाके अनन्तर ही 'इदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिका प्रतिपादन है। आत्माके विज्ञानसे सबका विज्ञान क्यों होता है? इसलिये कि-आत्मासे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, यह ब्राह्मण-जाति, यह क्षत्रिय-जाति, ये सब भूरादि-लोक, ये सब इन्द्रादिदेव, ये सब पृथ्व्यादि भूत, सब-कुछ यह आत्मा ही है। यदि आत्मासे भिन्न, जड़वर्ग या जीववर्ग माना जाय तो अन्य आत्माके विज्ञानसे अन्य जड़वर्ग एवं जीववर्गका ज्ञान कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता, इसलिये आत्मासे भिन्न जड़वर्ग एवं जीववर्गको मानना श्रुतिका ही तिरस्कार करना है।

भगवद्गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। (१३।१५)

वह परमात्मा सब भूतोंके भीतर और बाहर भी है, और वही अचर (जड़वर्ग) और चर (जीववर्ग) भी है, अर्थात् जड़वर्ग एवं जीववर्ग उससे भिन्न नहीं है।

विष्णुपुराणमें भी स्पष्ट कहा है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णु-
वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं
यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य! ॥
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्,
क्वचित्कदाचिद् द्विज! वस्तुजातम्।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेद-
विभिन्नचित्तैर्बहुधाऽभ्युपेतम् ॥
(२।१२।३८x४३)

हे विप्रवर्य! सूर्य-चंद्र तारागण, आदि ज्योतियाँ चतुर्दशभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियां; और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही है, तथा और भी जो कुछ है, अथवा नहीं है, सभी एकमात्र विष्णु ही है। अतः हे द्विज! विज्ञानघन-विष्णुसे अतिरिक्त कोई जडवर्ग जीववर्ग आदि पदार्थ नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तों द्वारा एकही विज्ञानघन विष्णु नाना प्रकारसे मान लिया गया है।

इन श्लोकोंमें ज्योतिरादि समस्त चराचर जगत् का परमात्मा विष्णुके साथ-स्पष्ट ही तादात्म्य सम्बन्ध कहा गया है। काल्पनिक-भेद एवं वास्तविक-अभेद जिसमें हो वह तादात्म्य-सम्बन्ध कहलाता है। यदि ज्योतिरादि जगत् विष्णु परमात्मासे भिन्न एवं पारमार्थिक माना जाय तो यह तादात्म्यनिर्देश सर्वथा असंगत हो जायगा। अतएव 'ज्योतींषि विष्णुः' इत्यादि एक-विभक्तिरूप सामानाधिकरण्य-निर्देश ज्योतिरादि चराचर विश्वके नामरूपात्मक काल्पनिक अंश का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाध करके अस्ति, भाति, प्रिय रूपसे पारमार्थिक-अभेद का प्रतिपादन करता है।

पूर्वोक्त प्रबल-प्रमाणोंके आलोचनसे पक्षपात-शून्य बुद्धिमान् विवेचक स्पष्ट समझ सकते हैं कि-'जीव जड और ईश्वर रूप तत्त्वत्रय परमार्थतः भिन्न हैं' यह मत शास्त्रानुकूल नहीं हो सकता।

(शांकर-सिद्धान्त)

'परमात्मासे अभिन्न है, या भिन्न है, सत् है या असत् है' इस प्रकार जिसका विवेचन नहीं हो सकता, ऐसी जो अनिर्वचनीया, त्रिगुणमयी, माया, अज्ञान, अविद्या, आदि नामवाली, परमात्मा की अघटघटनापटीयसी माया-शक्तिरूप उपाधिसे युक्त परमात्माही इस चराचर विश्वकी मूलप्रकृति है, यानी अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

परमात्मासे वस्तुतः भिन्न त्रिगुणात्मक प्रधान ही जगत् की मूल-प्रकृति है।

(समीक्षा)

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्।' 'आनीदवातं स्वधया तदेकम्' 'तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्' तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्, तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम्।' (ऋग्वेदसंहिता० मण्डल १०। सूक्त १२९। मन्त्र १ २-३) (तैत्तिरीय ब्राह्मण० २।८।९।३-४) यह श्रुति सद् ब्रह्मसे तथा असद्-शशशृंगादिसे जिसका निरूपण नहीं हो सकता है, ऐसे अनिर्वचनीय, जगत् का परिणामी उपादान कारण, अज्ञान का स्पष्ट निरूपण करती है। 'तमः आसीत्' के तमः शब्दसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अज्ञान कहा गया है, 'नासदासीत्' 'नो सदासीत्' इस निषेध-द्वयसे उस तममें सदसदनिर्वचनीयता सिद्ध होती है, यद्यपि यह श्रुति प्रलय-कालका निरूपण करती है, प्रलय-कालमें सद् एवं असत् दोनोंका अभाव बतलाती है, तथापि उसीही सूक्तमें 'तमः आसीत्' इससे प्रतिपादित जो तम है, इसका सत्त्व (सत्ता) माना जाय तो 'नो सदासीत्' इस सत्के निषेध की संगति न होगी, और असत्त्व (असत्ता) माना जाय तो 'नासदासीत्' इस असत्के निषेध की संगति न होगी। अतः वह तम सत्से एवं असत्से भिन्न अर्थात् अनिर्वचनीय सिद्ध होता है।

अतएव देवी-भागवतकी देवी-गीतामें भी स्पष्ट कहा है-

तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः॥
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा।

(१।२।४)

अर्थात् उस परब्रह्मकी कोई स्वतः सिद्धा शक्ति है, यानी स्वभूत-ब्रह्मकी सत्ता एवं स्फूर्ति प्राप्तकरके जो-प्रतीत होती है-ऐसी शक्ति-मायानाम से विख्यात है। वह न पारमार्थिक-सद्रूपा है, एवं न असती-शून्यरूपा है, एवं विरोध होने से सत् एवं असत् उभयरूपा भी नहीं है, किन्तु सत् असत् से विलक्षणा कोई वस्तुभूता यानी आवरक होने के कारण भावरूपा है।

और यह उसका ऐसा अनिर्वचनीयपना युक्तिसिद्ध भी है, यदि वह तमःशब्दवाच्य अज्ञान पारमार्थिक सत् माना जाय तो उसकी ब्रह्मकी तरह निवृत्ति कदापि न होगी,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है, अर्थात् अज्ञान, ज्ञानसे निवर्त्य है। शास्त्र भी कहता है—

'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः' (श्वे० १।१०)

'ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।'

(गी० ५।१६)

'मायामेतां तरन्ति ते' (गी० ७।१४)

अर्थात् पुनः प्रारब्धकर्मका क्षय होने पर विदेहकैवल्य-मोक्षमें समस्त माया की निवृत्ति होती है, लेशाविद्यारूप माया भी नहीं रहती। आत्मज्ञानद्वारा जिनका आत्माका अज्ञान नष्ट हो गया है। वे इस मायाको तर जाते हैं, यहाँ तरति नाश-अर्थका बोधक है, 'पाप्मानं तरति' 'तरति शोकं, इत्यादि वचनोंमें यही अर्थ प्रसिद्ध है। अतः उसे सत्‌से भी भिन्न मानना चाहिये, बाध्य होने के कारण।

यदि उस अज्ञानको शशश्रृंगवत् असत् माना जाय तो उसकी कार्यरूपसे प्रतीति न होनी चाहिये। होती है प्रतीति, इसलिये उसे असत्‌से भी भिन्न मानना योग्य है। इस प्रकार तादृश अनिर्वचनीय-अज्ञान श्रुति-युक्ति सिद्ध है।

और पूर्वोक्त 'नासदासीयसूक्त' में सत् शब्दका अर्थ चिद्व्यष्टिरूप वस्तु, तथा असत् शब्दका अचिद्व्यष्टिरूप वस्तु तथा तमः शब्दका अर्थ अचित्समष्टिरूप वस्तु है, ऐसा मानना प्रमाण एवं प्रसिद्धिसे शून्य है। क्योंकि-'अस्तीति सत्' एवं 'तद्विरुद्धमसत्, यह सदसत् का अर्थ तो लोकमें एवं शास्त्रमें प्रसिद्ध है, तथा प्रामाणिक है।

और इस ऋग्वेदीय सूक्तका और भी अधिक स्पष्ट अर्थ जानने की जिसको इच्छा हो, उसे इस सूक्तके सायण-भाष्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का एवं अस्मत्प्रणीत-ऋग्वेदसंहितोपनिषच्छतककी अध्यात्म-ज्योत्स्ना-विवृतिका अवलोकन करना चाहिये। उस भाष्यमें सर्ववेद-भाष्यकार आचार्य सायण ने तथा उस विवृतिमें हमने सविस्तार अनिर्वचनीय-अज्ञानका प्रतिपादन किया है, लेख-विस्तार भयसे हम उस भाष्यके तात्पर्यका तथा विवृति का यहाँ उल्लेख नहीं करते हैं।

और परमात्मा ही माया द्वारा इस चराचर विश्व का अभिन्न-निमित्त उपादान कारण है, इस सिद्धान्त को महर्षि वेदव्यासजीने वेदान्त-दर्शन-ब्रह्मसूत्रमें स्पष्ट प्रतिपादन किया है—

'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' (१।४।२३)

परमात्मा ही इस चराचर-विश्वकी प्रकृति यानी उपादान कारण है, तथा सूत्रस्थ-चकारसे निमित्त-कारण भी है। क्योंकि-ऐसा माननेसे ही श्रुतिप्रतिपादित प्रतिज्ञा और दृष्टान्तका उपरोध नहीं होता है। प्रायः सभी उपनिषदोंमें एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानकी प्रतिज्ञा की गई है। इस प्रतिज्ञा का समर्थन तभी ही हो सकता है कि-जब परमात्मा को सकल-विश्वका उपादान कारण माना जाय। समस्त कार्य-वर्ग उपादान-कारणसे अतिरिक्त नहीं होता, अतः उपादान-कारणके ज्ञानसे सब-कार्यका ज्ञान होता है। परमात्मा को निमित्त-कारण मात्र मानने पर प्रतिज्ञा का समर्थन नहीं होता, क्योंकि-निमित्तकारणसे कार्य पृथक् होता है। और 'मृत्पिण्ड' 'सुवर्णपिण्ड' आदिका दृष्टान्त भी उपादान-कारणताको दृढ़ करते हैं।

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय (छां० ६।२।३) 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छां० ६।२।५) ' यह श्रुति भी पर-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मात्माको ईक्षापूर्वक स्वतन्त्र-प्रवृत्तिसे निमित्तकारण तथा 'बहु स्यां' 'मैं बहुत होजाऊँ' इस आत्मविषयक बहुभवन से उपादान-कारण सिद्ध करती है।

'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते, आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति' (छां० १।९।१) यह श्रुति भी परमात्माको उपादान-कारण सिद्ध करती है। क्योंकि—'यद्धि यस्मात्प्रभवति यस्मिंश्च प्रलीयते तत्तस्योपादान प्रसिद्धम्' (शां-भा) जो जिससे उत्पन्न होता है, और जिसमें लीन होता है, वह उसका उपादान कारण होता है, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है, और मृत्तिका में ही लीन होता है, अतः मृत्तिका घटका उपादान कारण है। इस प्रकार तमाम पृथिव्यादि-भूत परमात्मा से उत्पन्न होते हैं, और आखिर परमात्मामें ही लीन हो जाते हैं, इसलिये परमात्मा ही इनका उपादान कारण है।

इसप्रकार 'तदात्मानं स्वयमकुरुत' (तै० २।७) 'सच्च त्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तश्च, (तै० २।६) 'यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः, (मुण्ड० १।१६) 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, (मु० १।१।७) इत्यादि श्रुतियोंके पर्यालोचनसे, तथा साक्षाच्चोभयाम्नानात्, (ब्र० सू० १।४।२५) योनिश्च हि गीयते (ब्र० सू० १।४।२७) इत्यादि शारीरक-सूत्रभाष्यके अनुसंधानसे परमात्मा ही सकल विश्वका अभिन्न निमित्त-उपादान कारण सिद्ध होता है। इन-श्रुति एवं सूत्रोंका यह अर्थ है-उस ब्रह्मने अपने आपको ही विश्वरूपसे बना डाला। वही सत्-मूर्त-भूतत्रयरूप हुआ, तथा असत्-अमूर्त भूत-द्वयरूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुआ। वह निरुक्त यानी स्थूल जगत् तथा अनिरुक्त यानी सूक्ष्म जगत् रूपसे विवर्तित हुआ। जो ब्रह्म भूतों की योनि यानी उपादान कारण है, उसे धीर-यानी अविकृत-प्रज्ञावाले महामानव देखते हैं अर्थात् उसका अपरोक्ष अनुभव करते हैं। जिसप्रकार उर्णनाभि-लूताकीट जालका अपनेसे सर्जन करता है, और पश्चात् उसको अपनेमें समेट लेता है, अतः उस जालका उर्णनाभि-अभिन्न निमित्त उपादान-कारण माना गया है. तद्वत्-परमेश्वर भी जगज्जालका सर्जक एवं उपसंहारक होनेके कारण अभिन्न-निमित्तोपादन-कारण है। श्रुतियोंमें ब्रह्मका साक्षात् ग्रहण करके उससे जगत् की उत्पत्ति एवं उसमें प्रलयका कथन किया है, इसलिए ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है। ब्रह्मको श्रुतिने योनि शब्दसे वर्णन किया है, और योनि शब्द 'पृथिवीयोनिः ओषधिवनस्पतीनाम्'। इत्यादि स्थलोंमें उपादान कारण अर्थका ही प्रतिपादक देखा गया है।

उपादान कारण भी दो प्रकारका होता है-एक विवर्त और दूसरा परिणामी। परमात्मा स्वतः निर्विकार होनेके कारण वह परिणामी उपादान कारण नहीं हो सकता, किन्तु परिशेषात् उसे विवर्त उपादान कारण माना जाता है। सविकार होनेके कारण माया (प्रकृति) परिणामी-उपादान कारण है। अतः यह चराचर जगत्-ब्रह्म (परमात्मा) का विवर्त एवं मायाका परिणाम माना गया है।

और उपक्रमोपसंहारादिषड्विधलिङ्गोंके अनुसंधान पूर्वक उपनिषदोंके पर्यालोचनसे यह निःसन्देह सिद्ध-होता है कि-कोई श्रुतियाँ साक्षात्, कोई द्वैत निषेध-द्वारा कोई उपादान कारण निरूपण द्वारा, वास्तविक अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करती हैं। अतएव उस परमात्मासे वस्तुतः भिन्न किसी भी पदार्थको नहीं मान सकते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और 'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो, नान्यत्ततः कारण-कार्यजातम्।' (वि० पु० १।२२।९७) 'भूतानि सर्वाणि तथाऽन्नमेतदहञ्च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति।'(वि० पु० ३।११।५४) * इत्यादि विष्णु पुराणके वचनोंके पर्यालोचनसे भी पूर्वोक्त सिद्धान्त ही सिद्ध होता है।

(शांकर-सिद्धान्त)

अज्ञानसे ही परमात्मामें यह नामरूपात्मक-जगत् भासता है, इसीका नाम विवर्तवाद है। अत एव परमात्मा का विवर्तभूत यह प्रातिभासिक जगत् सर्वथा मिथ्या ही है, पारमार्थिक-सत्य नहीं हो सकता।

(रामानुज-सिद्धान्त)

प्रधान (त्रिगुणात्मिका-प्रकृति) ही अन्तर्यामी ईश्वरके सान्निध्यसे जगदाकार परिणत होता है, इसीका नाम परिणामवाद है। अत एव प्रधानका परिणामरूप यह जगत् सर्वथा सत्य ही है, मिथ्या कदापि नहीं हो सकता।

(समीक्षा)

'एवमेव खलु सौम्य अन्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ, अद्भिः सौम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ, तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ, सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः।' (छां० ६।८।४) 'यदल्पं तन्मर्त्यं।' (छां० ७।२४।१) 'तन्केन

* मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं, उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य (द्वैतप्रपञ्च) कारण (माया-प्रकृति) समुदाय नहीं है। सम्पूर्ण प्राणी, यह अन्न, और मैं—सभी विष्णु हैं, क्योंकि—उनसे भिन्न और कुछ है ही नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कं विजानीयात्' (बृ० ४।५।१५) 'न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात्' (बृ० ४।३।३०) 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' (बृ० ४।३।३२) 'अतोऽन्यदार्तम्' (बृ० ३।४।२)* इत्यादि श्रुतियाँ समस्त कार्यरूप-परिच्छिन्न-

* उद्दालक महर्षि अपने प्रिय-पुत्र श्वेतकेतुके प्रति उपदेश करते हैं—हे सोम्य! यह अन्नसे उत्पन्न एवं अन्न से संवर्धित-शरीर, अङ्कुरकी तरह कार्य है। अत एव इसका कोई कारण अवश्य होगा; कार्य, कारण-रहित कदापि नहीं होता, इसलिये इस अन्न-मय कोशरूप शरीरका कारण अन्नरूप पृथ्वी माना जाता है। यह पृथिवी भी कार्य है अत एव उसके कारण जलका अन्वेषण करो। और जल भी कार्य है, अतः उसके कारण तेज का अन्वेषण करो। और तेज भी कार्य है, अतः इसके कारण सद्-ब्रह्मका अन्वेषण करो। वही एकमेवाद्वितीय सद्वस्तु सबका परम-मूल कारण है, जिसमें यह नामरूपात्मक-सकल संसार रज्जुमें सर्पकी तरह अविद्यासे अध्यस्त है। अतएव हे सौम्य! यह पृथिव्यादि सकल प्रजा '**सन्मूला**' है, यानी सद् ब्रह्म ही इन सबका परम-मूल कारण है। केवल सन्मूला ही है, यह बात नहीं, किन्तु '**सदायतना**' भी है, अर्थात् स्थितिकालमें सद्-ब्रह्म ही इन सबका आधार अधिष्ठान है, जैसे मृत्तिकाका आश्रय न करके घटादिकोंकी सत्ता एवं स्थिति नहीं रह सकती है, तद्वत् सद्ब्रह्मको आश्रय न करके पृथिव्यादि सकल विश्वकी सत्ता एवं स्थिति नहीं रह सकती है। अन्तमें सब प्रजा '**सत्प्रतिष्ठा**' है, यानी सद्ब्रह्म ही सबके लयका-समाप्तिका स्थान है, अत एव समस्तकार्यका सद्ब्रह्ममें कल्पितत्व इस श्रुति-में सिद्ध हुआ, क्योंकि-कारणमें कार्य कल्पित ही होता है, जैसे मृत्तिकामें घटादि।

जो अल्प परिच्छिन्न है, वह विनाशी है, पारमार्थिक नहीं है। उस अद्वैतावस्थामें किस करण (इन्द्रिय) से किस विषयको कौन जाने? अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विनाशी जगत्को सद्ब्रह्ममें कल्पित सिद्ध करती हैं। और कल्पना अज्ञानसे ही होती है, यह प्रसिद्ध है, जैसे रज्जुमें सर्पकी कल्पना रज्जुके अज्ञानसे होती है, तद्वत्। और

'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' 'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते' (बृ० ४।३।१०)।

स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो, रूपाणि देवः कुरुते बहूनि।
उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो, जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन्॥
(बृ० ४।३।१३)

स्वप्नमें यह चिदात्मा पुरुष स्वयं प्रकाश है, वहाँ न रथ हैं, न अश्व हैं, न मार्ग हैं, किन्तु वह अपनी वासना-मयी-कल्पनासे इन सबका सर्जन करता है।

स्वप्न-स्थानमें उत्तम-देवादि भावको एवं निकृष्ट-तिर्यगादि-भावको प्राप्त हुआ स्वप्नका अधिष्ठाता-तैजस आत्मा, वासना-निर्मित-असंख्य-रूपोंका निर्माण करता है। तथा वहाँ स्त्रियोंके साथ रमण करता हुआ-सा मित्रोंके साथ हँसता हुआ-सा, एवं भयजनक सिंहादिओंको देखता हुआ-सा एक ही आत्मा विविधरूपोंसे विवर्तित हो जाता है।

यह श्रुति स्वप्न दृष्टान्तके द्वारा जाग्रत् संसारको भी अज्ञानसे कल्पित बतलाकर मिथ्या सिद्ध करती है। 'स्वात्य-

---

वहां कर्ता, करण, एव कर्मरूपी त्रिपुटीका अत्यन्ताभाव हो जाता है। वहां दूसरा नहीं है, जब दूसरा पृथक् होवे, तभी तो वह जाना जाय। शुद्ध एक अद्वैत ज्ञानरूप द्रष्टा ही परिशिष्ट रहता है, इससे अन्य अनात्मवर्ग आर्त है यानी बाधित-मिथ्या है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्ताभावाधिकरण एव प्रतीयमानत्वं मिथ्यात्वम्' मिथ्या वह है-जिसकी अपने अत्यन्ताभावके अधिकरणमें प्रतीति होती हो, जैसे सर्पके अत्यन्ताभावाधिकरण-रज्जुमें सर्प की प्रतीति। पूर्वोक्त स्वप्न श्रुति कहती है कि—स्वप्नमें एकमात्र स्वयं-ज्योति-पुरुष आत्मा ही पारमार्थिक पदार्थ है। न तो वहां रथ हैं, न घोडे हैं, एवं न मार्ग हैं, परन्तु निद्रा-दोषसे रथ, घोड़े एवं मार्ग बने हुए प्रतीत होते हैं, तद्वत् यह जाग्रत्-संसार भी वस्तुतः है नहीं, परन्तु अज्ञान-दोषसे उसकी प्रतीति होती है।

अत एव सभी शास्त्रोंमें संसारकी निवृत्ति ज्ञानसे ही मानी है, यह प्रसिद्ध है कि-अज्ञानसे कल्पित-वस्तु की ज्ञान से निवृत्ति होती है। यदि संसार पारमार्थिक सत्य होता तो उसकी ज्ञानसे निवृत्ति कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती। 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' (यजुर्वेद-संहिता० ३१।८) 'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः' (श्वे० ४।१६) 'तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः' (मुण्डक० ३।८) 'ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।' (गी० ५।१६) इत्यादि शास्त्र ज्ञानसे अज्ञान-कल्पित, विविध क्लेश संकुल, नामरूपात्मक संसारकी निवृत्ति स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं।

अत एव पूर्वोक्त स्वप्न-श्रुतिका व्याख्यान करते हुए वार्तिककार-श्रीसुरेश्वराचार्यजी वार्तिक-ग्रन्थमें कहते हैं—

सर्वेन्द्रियवियोगेऽपि, सुखिदुःखित्वमात्मनः।
स्वप्ने दृष्टमतः सङ्ग आत्मनस्तात्त्विको भवेत् ॥
मैवं मृषात्वात्स्वप्नस्य, मनोमात्रविजृम्भणात्।
बाह्येन्द्रियवियोगेऽपि, न मनो लुप्यते तदा ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाराजादयस्तस्य, स्वप्नानुभवगोचराः ।
न वास्तवा इति ज्ञेयाः शयानेभ्यः पृथक्त्वतः ॥
गृहे शयाना ये दृष्टास्ते तु स्वप्ने वनं गताः ।
जाग्रद्दृष्टं मृषा स्वप्ने, स्वप्नस्थं जागरे मृषा ॥
अन्योऽन्यव्यभिचारित्वात्स्वप्न-जाग्रदवस्थयोः ।
मिथ्यात्वमित्यसावर्थः स्वप्नश्रुत्या विवक्षितः ॥

(बृहदारण्यक-भाष्यवार्तिक)

शंका—स्वप्नमें चक्षुरादि सभी इन्द्रियोंका वियोग होने पर भी आत्माका सुखीपना एवं दुःखीपना देखा गया है, अतः आत्माका अनात्माके साथ वास्तविक सम्बन्ध मानना चाहिये ।

समाधान—ऐसा मत कहो, वास्तविक-सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि-मनसे ही प्रतीत होनेके कारण अनात्म-रूप-स्वप्न मिथ्या है। मिथ्याका सम्बन्ध भी मिथ्या ही होता है। चक्षुरादि-बाह्येन्द्रियका लोप होने पर भी स्वप्नमें संकल्पविकल्पात्मक-मन लुप्त नहीं होता। अत एव स्वप्नानुभवके विषय महाराजादि पदार्थ, निद्रावाले शरीरोंसे पृथक् होनेके कारण वास्तविक नहीं हैं। घरमें सोये हैं, वे स्वप्नमें वनमें गये हुए मालूम होते हैं, अतः जाग्रत्का दृष्ट संसार स्वप्नमें मिथ्या हो जाता है, और स्वप्नका दृष्ट-संसार जाग्रत्में मिथ्या हो जाता है, अतः स्वप्नावस्था एवं जाग्रत् अवस्थाको परस्पर व्यभिचारी होनेके कारण जाग्रत् एवं स्वप्नमें प्रतीयमान सकल अनात्मवर्ग मिथ्या ही सिद्ध हो जाता है, यही स्वप्न-श्रुतिका गुह्य रहस्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'तदात्मानं स्वयमकुरुत' (तै० २।७)
'सच्च त्यच्चाभवत' (तै० २।६)

इत्यादि श्रुतियोंका तात्पर्य विवर्तवादमें ही है। तत्पदाभिधेय आत्मा ही स्वयं पूर्वसिद्ध अपनी आत्माको साध्य जगत्-रूपसे परिणत करता है। आत्मा ही कृतिका विषय एवं आत्माही कृतिका आश्रय है, अर्थात् सर्वस्वरूप आत्मा ही है। 'ब्रह्मैवेदं विश्वम्' (मु० २।२।११) 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० ७।२५।२) इत्यादि श्रुतियोंका भी यही आशय है। निष्कल-निष्क्रिय-आत्माका दुग्धादिकी तरह अनित्यत्वपरिच्छिन्नत्वादिकी प्रसक्ति होनेके कारण एकदेशेन या सर्वात्मना परिणाम नहीं बन सकता है, अतः रज्जु-सर्पवत् आत्माका विवर्त ही संसार मानना इष्ट होगा। परिणामित्वेन लोक-प्रसिद्ध-घटादिकार्यमें भी युक्त्यसहत्वेन अनिर्वचनीयत्वरूप विवर्तत्व ही स्वीकृत है, क्योंकि-मृत्तिकादि-कारणसे भेदेन या अभेदेन अथवा भेदाभेदेन घटादि-कार्यका निर्वचन अशक्य है। अतएव 'मृत्तिकेत्येव सत्यम' (छां० ६।१।४) इत्यादि श्रुति एकमात्र कारणमें ही सत्यत्वका अवधारण करके कार्यको 'वाचारम्भणं विकारो' (छां० ६ १।४) इत्यादि पदसे मिथ्या अनिर्वचनीय ही सिद्ध करती है। अतः संक्षेपशारीरकाचार्य सर्वज्ञात्म-मुनिने कहा है—

कृपणधीः परिणाममुदीक्षते, क्षपितकल्मषधीस्तु विवर्तताम्।
स्थिरमतिः पुरुषः पुनरीक्षते, व्यपगतद्वितयं परमं पदम्॥
(२८९)

संसारासक्त मनुष्य 'यह प्रपञ्च ब्रह्मका पारमार्थिक-सत्य परिणाम है' वस्तुतः मैं कर्ता भोक्ता जीव हूँ, ऐसा समझता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। संसारसे विरक्त निर्मल-बुद्धि मुमुक्षु-पुरुष, उपनिषच्छास्त्रका श्रवण करके यह समग्र प्रपञ्च 'ब्रह्मका विवर्त है' ऐसा निश्चय करता है। और मनन निदिध्यासनके द्वारा स्थितप्रज्ञ होकर अद्वितीय-शुद्ध-परमपद का साक्षात्कार करता है।

(शांकर-सिद्धान्त)

शुक्ति-रजतस्थलमें, एवं स्वप्नादिमें अनिर्वचनीय ही पदार्थ प्रतीत होते हैं, और यह सकल विश्व भी अज्ञानरूपी दोषसे अनिर्वचनीय ही भासता है, यही अनिर्वचनीय-ख्याति है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

'यथार्थं सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम्।'

(सब ज्ञान यथार्थ ही होता है, ऐसा वेदवेत्ताओंका मत है)

इत्यादि ग्रन्थसे रामानुजाचार्यजीने सर्वत्र सत्ख्याति स्वीकार की है।

(समीक्षा)

सत्की ही प्रतीति होती है, इसका क्या अर्थ है? प्रातिभासिक-रूपसे सत्की प्रतीति होती है, ऐसा कहने पर हम अद्वैतवादियोंको यह पक्ष इष्ट है, हम भी ऐसा मानते हैं। यदि पारमार्थिकरूपसे सत्की प्रतीति होती है, ऐसा कहो तो मरुमरीचिका-स्थलमें जलकी प्रतीति न होनी चाहिये, क्योंकि-वहाँ पारमार्थिक-सत् जल नहीं है, यदि वहाँ ऐसा जल होता तो उससे गंगाजलवत् स्नानपानादि कार्य होना चाहिये था। और 'नेदं वास्तविकं जलं किन्तु प्रतिभासमात्रम्' इस यथार्थज्ञानसे उसका बाध न होना चाहिये, बाध होता है, अतः उस जलको पारमार्थिक सत् नहीं मान सकते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मण्डन—सकल-भूतोंका पञ्चीकरण होनेसे मरुभूमिमें भी जलका अंश विद्यमान रहता है, इन्द्रियदोषसे सूर्य-रश्मि एवं मरु-भूमिका तो ग्रहण नहीं होता है, किन्तु उसमें रहा हुआ वास्तविक सत् जलका ही ग्रहण होता है, इसप्रकार शुक्ति रजत स्थलमें भी समझना चाहिये, पञ्चीकरण प्रक्रिया के अनुरोधसे शुक्तिमें भी तेजका अंश सत्-रजत विद्यमान है, अतः उसका ग्रहण होता है, इसलिये सर्वत्र सत्ख्याति माननेमें कुछ बाध नहीं है।

खण्डन—यद्यपि पञ्चीकृत-पदार्थरूप मरु-भूमिके एक देशमें जल विद्यमान है, परन्तु अल्प एवं सूक्ष्म होनेके कारण उसका किसी भी प्रकारसे प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं हो सकता। और वह अतिसूक्ष्म एवं अत्यल्प सत्य-जलका अंश दूरसे प्रत्यक्ष होता है, और समीपमें प्रत्यक्ष नहीं होता है, ऐसा मानना सर्वथा युक्ति-विरुद्ध है। प्रत्युत जैसे एक केश (बाल) का सूक्ष्म होनेके कारण समीपमें प्रत्यक्ष होता है, और दूरसे प्रत्यक्ष नहीं होता है, तद्वत् उस जल का समीपमें प्रत्यक्ष होना चाहिये था और दूरसे उसका प्रत्यक्ष न होना चाहिये था। परन्तु ऐसा होता नहीं।

इन्द्रियदोषसे दूरसे प्रत्यक्ष एवं समीपमें अप्रत्यक्ष होता है, ऐसा मानने पर वह दोष-जन्य होनेसे भ्रान्तिज्ञान कहलायेगा, यथार्थज्ञान न हो सकेगा, ऐसा होनेपर 'सभी यथार्थ-ज्ञान हैं' इस आपके मतका खण्डन हो जाता है।

और समीपमें 'नेदं जलम्' ऐसी सभीको प्रतीति होती है, यह आपके मतसे भूमिमें विद्यमान-सत् जलकी असत्-रूपसे प्रतीति होनेके कारण अन्यथा-ख्याति हो जायगी, सत्ख्याति न रहेगी। और मरुभूमि-स्थित सूक्ष्मजल, स्थूल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूपसे प्रतीत होनेके कारण आपके मतमें अन्यमें अन्यका अवभास यानी सूक्ष्ममें स्थूलत्वका अवभासरूप अन्यथा ख्याति-अवर्जनीय है।

यदि आपण (हट्ट) स्थलमें प्रतीत रजत, एवं शुक्ति स्थलमें प्रतीत रजत, दोनों एक-समान वास्तविक हैं, तो जैसे हट्टके रजतसे आभूषण बनते हैं, तद्वत शुक्ति-रजतसे भी आभूषण बनने चाहिये, हट्टके रजतका जैसे क्रय-विक्रय होता है, ऐसा क्रय-विक्रय शुक्ति-रजत का भी होना चाहिये। यदि इस दोषके परिहारार्थ इन दो प्रकारके रजतोंमें कुछ विलक्षणता मानी जाती है तो 'सत्यख्यातिवाद' का खण्डन हो जाता है। विलक्षणता न मानने पर समान व्यवहार क्यों नहीं होता? यह आपत्ति वज्र-लेपायित रह जाती है, उभयतः पाशारज्जु, अतः सत्यख्यातिवाद केवल-युक्ति-प्रमाण शून्य प्रलाप-मात्र है।

और स्वप्नमें प्रतीत सकल-पदार्थ, प्रातिभासिक-कल्पनामात्र हैं अतः वे पारमार्थिक-सत्य कभी नहीं हो सकते। और 'न तत्र रथाः' इत्यादि श्रुति स्वप्न-पदार्थोंके वास्तविकत्वका निषेध स्पष्ट ही प्रतिपादन करती है। स्वाप्निक-पदार्थ ईश्वर सृष्ट नहीं हैं, किन्तु मनकी कल्पनासे प्रतीत हैं, अतः-मनकी कल्पना निवृत्त होनेपर उनकी प्रतीति नहीं होती, यह सर्वानुभव सिद्ध है, अनुभवका अपलाप करना कोरी मूर्खता मानी जाती है।

और 'मायामात्रन्तु' (ब्र० सू० ३।२।३) इत्यादि सूत्रोंमें भगवान् वेदव्यासजीने स्वप्नस्थपदार्थोंको मायामात्र घण्टाघोषसे कहा है। और माया शब्द, अनिर्वचनीय मिथ्या पदार्थमें ही प्रसिद्ध है। ऐन्द्रजालिक-पदार्थोंको देखकर आज

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी लोग कहते हैं कि-ये पदार्थ केवल मायामात्र हैं, प्रतीति मात्र हैं, वस्तुतः कुछ नहीं। यदि ऐन्द्रजालिक रुपया आदि पदार्थ वास्तविक होते तो यह जादूगर एक-एक पैसेके लिये हाथ क्यों फैलाता? इन पदार्थोंसे सेठ या राजा ही क्यों नहीं बन जाता? अतः देवीपुराणमें भी माया शब्दका यही अर्थ कहा है—

विचित्रकार्यकरणा अचिन्तितफलप्रदा।
स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके, तेन माया प्रकीर्तिता॥
(अ० ४५)

लोकमें भी जिसके कार्य एवं करण विचित्र यानी अलौकिक-मनोविलासमात्र हैं, तथा जो अतर्कित-फलोंको प्रदान करती है, जो स्वप्न एवं इन्द्रजाल की तरह है, वह माया कही जाती है। अतः माया और मायाका कार्य मिथ्या प्रतीतिमात्र है, अत एव उसकी निवृत्ति (अत्यन्ताभाव) हो जाती है, इस विषयमें विष्णु-पुराणकी भी सम्मति है—

तेन मायासहस्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना।
बालस्य रक्षता देहमेकैकांशेन सूदितम्॥
(वि० पु० १।१९।२०)

उस शीघ्रगामी सुदर्शन-चक्रने उस बालक-प्रह्लादकी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया।

श्रीमद्भागवत में भी यही कहा है—

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत, न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां, यथाऽऽभासो यथा तमः॥
(भा० २।९।३३)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसे दो चन्द्रमा सर्प, रजत आदि पदार्थ वस्तुतः न होते हुए भी दृष्टि-दोष से दिखाई देते हैं, वैसे यह नाम-रूपात्मक द्वैत प्रपञ्च वस्तुतः न होता हुआभी अविद्यासे प्रतीत होता है, और अधिष्ठान-रूप आत्माका साक्षात्कार होने पर अज्ञान एवं तत्कार्य-द्वैत-प्रपञ्च का बाध होजाता है, पश्चात् आत्मामें उसकी प्रतीति नहीं होती। जैसे नक्षत्रमण्डल में रहता हुआभी राहु नहीं दीखता, वैसे सच्चिदानन्दरूपसे आत्मा सर्वत्र सदा विद्यमान होता हुआभी अज्ञानियोंको विशेषरूपसे नहीं दीखता, इसे ही मेरी माया जाननी चाहिये, अर्थात् सद्वस्तुके अभानका एवं असद्वस्तुके भानका जो प्रयोजक है, वही अनिर्वचनीय-माया है।

इसलिये अनिर्वचनीयवाद ही सप्रामाणिक एवं युक्ति युक्त है, इसमें पक्षपात-शून्य-बुद्धिमान् महानुभावोंके लिये कुछ भी संशय नहीं रह सकता।

(शांकर-सिद्धान्त)

वेदादि-शास्त्र भी जगत्के अन्तर्गत होनेके कारण मिथ्या ही हैं, तथापि स्वप्न पदार्थवत् वे तत्वज्ञानके साधन हो सकते हैं। असत्यसे भी सत्यका ज्ञापन होता है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

वेदादि-शास्त्र स्वरूपसे सत्य हैं अतएव वे तत्वज्ञानके साधन हैं। असत्यसे सत्यकी उत्पत्ति नहीं होती है।

(समीक्ष)

'नेह नानास्ति किञ्चन'

(बृ० ४।४।१९। का० ४।११)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस अद्वय ब्रह्ममें नाना-भेद वस्तुतः कुछ भी नहीं है।

इत्यादि शास्त्र द्वैत-प्रपञ्चका निषेध कर ब्रह्माद्वैतका प्रतिपादन करता है। अत एव सदद्वैततत्त्व बोधनके लिये प्रवृत्त शास्त्र, शिष्यशासितृत्वादिके मिथ्या-भेदको ग्रहण कर सकल जगत्के मिथ्यात्व-बोधनके साथ-साथ स्वनिष्ठ मिथ्यात्वको भी—

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः (बृ० ४।३।२२)

इस ब्रह्मभावमें पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, लोक लोक नहीं रहते, देव देव नहीं रहते एवं वेद वेद नहीं रहते।

इत्यादि वाक्य द्वारा कण्ठरवसे प्रतिपादन करता है। अन्यथा अद्वैत-भावना की स्थिरता नहीं हो सकती। अतः शास्त्रकी गति मोक्षके द्वार पर्यन्त ही है, मोक्षावस्थामें शास्त्र की गति नहीं है। जैसे भोजन करनेके बाद जूठी पत्तलों की कुछ आवश्यकता नहीं रहती। अबाधित-सत्य-अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करनेसे ही वेदादि शास्त्र प्रामाणिक हैं, एतावता उनमें स्वरूपतः सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती। अतएव श्रीमद्भागवतकी प्रसिद्ध वेद स्तुतिमें भी यही सिद्ध किया है कि-' यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः।' (१०।८७।४१) इति। अर्थात् हे प्रभो ! ये श्रुतियाँ 'नेति नेति' इत्यादिसे आत्मभिन्न-द्वैत-प्रपञ्चका प्रतिषेध करके तात्पर्य वृत्ति द्वारा आपमें ही पर्यवसित हो जाती हैं; और आपका ज्ञापन करानेके बाद आपमें ही विलीन हो जाती हैं, यानी उनका पृथक्-अस्तित्व नहीं रहता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असत्यसे भी सत्य का ज्ञापन होता है, झूठे बाधित स्वाप्निक पदार्थ भी सत्य (व्यवहारिक) अर्थके ज्ञापक देखे जाते हैं। श्रुति स्वयं कहती है—

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रिय स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धिं तत्र विजानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने॥
(छां० ५।२।९)

'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति।'*

अत एव वाक्यपदीय-ग्रन्थमें महावैयाकरण भर्तृहरिने भी कहा है—

असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।

अर्थात्-नकली मार्गके आश्रयसे असली वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है।

घोडा गुम हो गया है, मालिक उसे ढूँढता है, एक मनुष्य धूलिमें घोडेके पैर दिखाकर कहता है—देखो! ये तुम्हारे घोड़के पैर हैं। भला! विचारना चाहिये कि धूलिमें घोड़के असली पैर कहाँ हैं? पैर तो घोड़के साथ हैं, जीवन-कालमें वे उससे वियुक्त नहीं हो सकते। तथापि उन नकली पैरोंसे असली पैर मिल जाते हैं।

* सकाम कर्म करनेके बाद स्वप्नमें यदि स्त्रियोंका दर्शन हो जाय तो वह कर्म सफल हुआ है ऐसा निश्चय करना चाहिये। स्वप्नमें यदि काले-दाँतवाले काले-पुरुषका दर्शन हो जाय तो ऐसा समझ लेना कि—अब शरीरकी कुशलता नहीं। यह अनुभूत-विषय है।

× यहाँ अनिर्वचनीय-मिथ्या पदार्थका नाम ही असत्य समझना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असत्यसे सत्यकी उत्पत्ति हम नहीं मानते। असत्यसे असत्यकी उत्पत्ति भले ही हो जाय, परन्तु पारमार्थिक-सत्य क्यों उत्पन्न होने लगा ?। हां, पूर्वोक्तरीतिसे असत्यसे सत्यका ज्ञापन हो सकता है।

शास्त्र तो केवल दूरसे निराश्रय, निर्विषय, निर्विशेष, अनुभवमात्र, सदद्वैत-ब्रह्मके प्रकाशका मार्ग प्रकाशित करता है। उसके प्रकाशका मार्ग है-अविद्यानिवृत्ति। मिथ्याभूत-शास्त्रसे जन्य-वृत्तिरूप ज्ञानको भी मिथ्या होनेसे तद्विषय ब्रह्म भी मिथ्या हो जायगा, यह आपत्ति नहीं दे सकते, क्योंकि-स्व (शास्त्र) जन्यज्ञान (अन्तःकरणवृत्ति) का वह ब्रह्मतत्त्व विषय नहीं होता। इस तथ्य को स्वय शास्त्र कहता है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। (तै० २।९)

अर्थात् मन सहित वाणीसे उपलक्षित समस्त इन्द्रियाँ; उस ब्रह्मात्मा तक न पहुंचकर बीचसे ही निवृत्त होती हैं।

शास्त्र जन्यज्ञानसे तो केवल अविद्याका निरास होता है, ज्ञान-अज्ञानका ही विरोधी होता है, यह सर्वत्र प्रत्यक्ष है। अत एव जैसे कतक-रेणु (जल-शोधक निर्मली बूटी) जलके मालिन्यको दूर करता हुआ स्वयं भी दूर हो जाता है, तद्वत् शास्त्र भी स्वजन्यज्ञान द्वारा अविद्याको दूर करता हुआ स्वयं भी स्वजन्य-ज्ञान (वृत्तिज्ञान) सहित मोक्षावस्था से दूर हो जाता है, अतएव अविद्या-निरासद्वारा दूरसे ब्रह्म-बोधक होनेके कारण शास्त्रमें तुच्छता नहीं आती, और कण्टकसे कण्टकके उन्मूलन की भाँति सप्रयोजनता होनेके कारण उसके प्रामाण्यका बाध भी नहीं होता।

(शांकर-सिद्धान्त)

जीवात्मा विभु (व्यापक) है, अत एव स्वरूपसे ही शरीरके सर्व-अवयवोंमें उसकी व्याप्ति है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(रामानुज-सिद्धान्त)

जीवात्मा अणु है, अत एव ज्ञान द्वारा सर्वशरीरोंके अवयवोंमें उसकी व्याप्ति है।

(समीक्षा)

'महान्तं विभुमात्मानं' (का० २।२२) 'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा' (का० २।२०) 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' (बृ० २।४।१३) 'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्'। (गी० २।१७) अर्थात् आत्मा महान् विभु-व्यापक है, वह सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म है, और वह महान्-पृथिव्यादिओंसे भी अतिमहान् है, इस श्रुतिमें अणुका अर्थ सूक्ष्म है, अणुपरिमाण नहीं, ऐसा मानने पर उसके अति-महत्त्व का वाध हो जाता है। जिस ज्ञानदशामें इस तत्त्वदर्शीको सब-विश्व आत्मा ही हो जाता है, उस समय किस इन्द्रियसे किस पदार्थको कौन देखे ? अर्थात्-त्रिपुटी-भेदका सर्वथा अभाव हो जाता है। वह आत्मा अविनाशी, इसलिये है कि-उससे समस्त विश्व व्याप्त है।

इत्यादि श्रुति-स्मृतियोंके आलोचनसे जीवात्माका विभु-व्यापक स्वरूप ही सिद्ध होता है। और आत्म-शब्द प्रत्यगात्म-विषयमें ही मुख्य है।

'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता'

(बृ० ३।४।२३)

यह श्रुति परमात्मासे अन्य द्रष्टा श्रोता, आत्माका निषेध करती है, अर्थात् परमात्मा ही बुद्ध्यादि-उपाधिसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

युक्त होकर द्रष्टा-श्रोता कहलाता है। परमात्मासे आत्मा भिन्न नहीं है, अतएव आत्माका विभु-परिमाण ही मानना चाहिये।

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।'

(श्वे० ६।११)

यह श्रुति सर्व भूतोंका अन्तरात्मा देव-परमेश्वर एक ही है, और वह सर्वव्यापक है, ऐसा स्पष्ट निर्देश करती है।

'जीवो ब्रह्मैव नापरः'।

अर्थात् उपाधि-शून्य जीव और ब्रह्ममें कुछ भी भेद नहीं है। उपाधि-संयुक्त जीवस्वरूपके विषयमें केवलाद्वैत-सिद्धान्तमें अवच्छेदवाद, आभासवाद और प्रतिबिम्बवाद ये तीन पक्ष माने गये हैं।

कहा है—

वाचस्पतेरवच्छिन्न आभासो वार्त्तिकस्य च।
संक्षेपशारीरकृतः प्रतिबिम्बः तथेष्यते॥

भामतीकार-वाचस्पतिमिश्रके मतमें जीव अवच्छिन्न है, वार्तिककार-सुरेश्वराचार्यके मतमें जीव आभास है, और संक्षेपशारीरकाचार्य-सर्वज्ञात्ममुनिके मतमें जीव प्रतिबिम्ब है।

अन्तः प्रवेशका नाम है अवच्छेद, और उस अवच्छेद-से संयुक्तका नाम है-अवच्छिन्न। जैसे जलके अन्तः प्रविष्ट आकाशको जलावच्छिन्न कहते हैं। तद्वत् बुद्धिके अन्तः प्रविष्ट चैतन्यको बुद्ध्यवच्छिन्न-जीव कहते हैं।

अन्यके सम्बन्धसे अन्यमें भासमान-अर्थका नाम है-आभास। जैसे जपाकुसुमके सम्बन्धसे स्फटिकमें भासमान-लालिमा आभास है, तद्वद् चेतन-ब्रह्मके सम्बन्धसे बुद्धिमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भासमान चैतन्यका नाम आभास जीव है। दर्पण आदि स्थलोंमें प्रतिबिम्ब तो प्रसिद्ध ही है।

अवच्छिन्न-वादके विषयमें अनेक श्रुति-स्मृति एवं सूत्र उपलब्ध हैं। जैसे—

'ब्रह्म दाशा ब्रह्म दासा ब्रह्मेमे कितवा उत' (अथर्ववेद)

कैवर्त्त, दास्यकर्मकारी एवं द्यूतकारी ये सभी ब्रह्म हैं।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

(अथर्ववेद–१०।८।२७) (तैत्तिरीयारण्यक–श्वेताश्वतर)

ब्रह्म स्त्री है, ब्रह्म पुरुष है, ब्रह्म कुमार है, कुमारी है, और वृद्धरूपमें दण्ड लेकर ब्रह्म ही चलता है, संसारमें नाना-रूप धारण करके ब्रह्म ही सर्वत्र विराजमान है।

यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः

सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।

तथाऽक्षराद् विविधाः सोम्य! भावाः

प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥ (मुण्डक० २।१)

जिस प्रकार सुदीप्त-अग्निसे असंख्य-अग्निरूप विस्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्मसे विविध जीव उत्पन्न होकर पुनः ब्रह्ममें ही लीन (तद्रूप) हो जाते हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता० १५।७)

मुझ ब्रह्मका ही अंश जीवलोकमें सनातन-जीवरूपसे अवस्थित है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहुमानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥

(भा० ३।२९।३४)

सभी जीवोंको सम्मानके साथ मनसे प्रणाम करना चाहिये, क्योंकि ईश्वर भगवान् ही जीव रूपसे सर्वत्र प्रविष्ट है।

'अंशो नानाव्यपदेशात्' (ब्र० सू० २।३।४३)

जीवात्मा परमात्मा का अंश है। एतावता 'जीवात्मा उस निराकार-परब्रह्मके किसी हिस्सेसे काटकर अलग किया हुआ टुकड़ा है' ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि-परमात्मा सर्वव्यापी, विज्ञानघन, नामरूपरहित एवं निरवयव है, अत एव उसके अलग अलग विभाग या टुकडे नहीं हो सकते, इसलिये शास्त्र उसे 'अच्छेद्य' 'अविकार्य' कहते हैं। अतः जैसे एक ही सर्वव्यापी आकाशका मठाकाश, घटाकाश, आदि, मठ, घट इत्यादि उपाधियोंसे परिच्छिन्न अंश या भाग माना जाता है, परन्तु वस्तुतः घटाकाश और महाकाशमें स्वरूपतः कुछ भेद नहीं है; तद्वत् जीवात्माको भी परब्रह्म का अंश उपाधिसे ही मानना चाहिये, वास्तविक अंशांशिभाव किसीभी प्रकारसे नहीं हो सकता।

इत्यादि शास्त्रोंके अनेक प्रमाण अवच्छिन्नवादके विषयमें पाये जाते हैं।

आभासवाद एवं प्रतिबिम्बवादमें विशेष विलक्षणता नहीं है, किन्तु यत्किञ्चिद्विलक्षणता है, वह यह है कि-आभासवादी आभासको मिथ्या मानते है, और प्रति बिम्बवादी बिम्बरूपसे प्रतिबिम्बको सत्य मानते हैं। प्रतिबिम्बवादमें भी शास्त्रोंके अनेक प्रमाण समुपलब्ध हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसे—

यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा॥

जैसे एकही सूर्यदेव भिन्न-भिन्न जलमें प्रतिबिम्बित होकर अनेक दीखते हैं, तद्वत् एकमेवाद्वितीय परब्रह्म, अनेक अन्तःकरणरूप उपाधिमें प्रतिबिम्बत कर हो अनेककी तरह प्रतीत होते हैं।

एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥

(ब्र० बि० १२)

एक ही चन्द्र अनेक-जलमें प्रतिबिम्बित होकर बहु-रूपसे प्रतीत होता है, तद्वत् एकही परमात्मा अनेक शरीरोंके सम्बन्धसे बहुरूपसे प्रतीत होता है।

'आभास एव च' (ब्र० सू० २।३।५०)

जीवात्मा, परमात्माका केवल आभास (प्रतिबिम्ब) मात्र है।* उपाधि-विशिष्ट आभास-रूप जीवात्मा, परमेश्वर ही साक्षात् है, ऐसा भी नहीं मान सकते।

---

* निराकार एवं रूपरहित वस्तुका भी प्रतिबिम्ब हो सकता है। जैसे शब्द, निराकार एवं रूपरहित है, परन्तु उसका प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिम्ब सुननेमें आता है, आकाश निराकार एवं रूपरहित है, परन्तु उसका प्रतिबिम्ब जलमें देखनेमें आता है। जिसका जिसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, उन दोनोंमें व्यवधान होना चाहिये, एसा भी नियम नहीं है, क्योंकि-जिस जलमें आकाशका प्रतिबिम्ब पडता है, उस जलमें व्यापक होनेके कारण आकाश प्रथमसे ही विद्यमान है, तथापि उसमें आकाशका प्रतिबिम्ब देखनेमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि–उपाधि–विशिष्ट-जीवके साथ परमेश्वरका नियन्तृ-नियम्यभाव सम्बन्ध है, अर्थात् परमेश्वरकी शुद्धसत्त्वप्रधाना-मायारूप उपाधि उत्कृष्ट है, और जीवात्माकी मलिन-सत्त्व-प्रधाना अविद्यारूप उपाधि निकृष्ट है। अतः उत्कृष्टोपाधि-सम्पन्न–ईश्वर निष्कृष्टोपाधिसम्पन्न जीवात्माका नियन्ता हो सकता है। यह नियन्तृ–नियम्यभाव औपाधिक है, वास्तविक नहीं है। विद्यासे अविद्यारूप-उपाधिका विनाश होने पर यह सम्बन्ध नहीं रहने पाता। अतएव सुरेश्वराचार्यजीने कहा है-

ईशेशितव्यसम्बन्धः प्रत्यगज्ञानहेतुजः ।
सम्यग्ज्ञाने तमोध्वस्तावीश्वराणामपीश्वरः ॥

परमात्मा ईशिता (नियन्ता) और जीवात्मा ईशितव्य (नियम्य) है, इस प्रकारका सम्बन्ध केवल प्रत्यगात्माके अज्ञानसे ही समुद्भूत है, जब आत्मज्ञानसे अज्ञान विनष्ट हो जाता है, तब नियन्तृ–नियम्यभाव सम्बन्ध नहीं रहने पाता,

---

आता है, तद्वत् परमात्माको निराकार, व्यापक, एवं रूपरहित होने पर भी बुद्ध्यादि–उपाधियोंमें उसका अलौकिक प्रतिबिम्ब पड़ सकता है।

और जिज्ञासुओंको यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि–आत्मतत्त्व, महासूक्ष्म, अवाङ्मनसगोचर एवं अलौकिक वस्तु है। लौकिक–दृष्टान्तोंके द्वारा उसका स्वरूप समझनेके लिये दृष्टान्त–दार्ष्टान्तके सर्वाङ्गोंका सम्मेलन होना ही चाहिये, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। वास्तवमें लौकिक–संसारमें ऐसा कोई भी पूर्ण दृष्टान्त न मिलेगा कि जिसके द्वारा अलौकिक आत्माका पूर्णरूपसे यथार्थ स्वरूप समझाया जाय। दृष्टान्त तो केवल इशारा मात्र हैं, उनके द्वारा यत्किञ्चित्स्वरूप समझनेमें आता है, पूर्ण एवं यथार्थ स्वरूपका अनुभव तो केवल सूक्ष्म एकाग्र एवं निर्मल बुद्धिसे ही हो सकता है, अतएव शास्त्रोंमें आत्माको स्वानुभवसंवेद्य कहा है। —लेखक।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उस समय यह जीव साक्षात् ईश्वरोंका भी ईश्वर परमेश्वर हो जाता है। अत एव उपाधि-विनि मुक्त-जीव परमात्मासे पृथक्-भिन्न वस्तु नहीं है, किन्तु वह ब्रह्मरूप ही हुआ ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। कहा हैं—

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।'

(गीता० ५।२४)

वह योगी ब्रह्मरूप हुआ ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है।

अतः उपाधिविनिर्मुक्त-जीवका स्वरूप., ब्रह्मके समान व्यापक ही मानना चाहिये।

और 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० २।६।१) 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' (छां० ६।४।२) 'स एष इह प्रविष्ट आ नखाग्रेभ्यः' (बृ० १।४।७) इत्यादि-श्रुतियोंके आलोचनसे 'परब्रह्म ही जीवरूप होकर इस कार्यकरण संघातमें प्रविष्ट हुआ है' ऐसा निश्चित होता है। तथा 'तत्त्वमसि' (छां० ६।८।७) 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृ० १।४। १०) 'अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः' (बृ० २।५।१०) इत्यादि श्रुतियोंसे परब्रह्मके साथ जीवका तादात्म्य (तद्रूपत्व) निश्चित होता है, अर्थात् 'परब्रह्म ही जीव है' ऐसा स्पष्ट निर्णय हो जाता है। जब परब्रह्म ही जीवात्मा है, तो जितना परिमाणवाला ब्रह्म होगा, उतने परिमाणवाला जीव होना चाहिये, अर्थात् जब ब्रह्म व्यापक-विभु है, तब तदभिन्न जीवको भी विभु व्यापक ही मानना चाहिये।

और जीवको अणु-परिमाण माननेमें अनेक दोष उद्भूत हो जाते हैं। सकल शरीरगत वेदनाका अनुभव अणु-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवको नहीं हो सकेगा, क्योंकि-वह अणु-जीव शरीरके एक-अल्प-प्रदेशमें ही रहेगा, सभी शरीरमें वह रह नहीं सकता।

मण्डन—जीवके अणु होनेपर भी उसका गुण चैतन्य (ज्ञान) दीप-प्रकाशकी तरह सर्व-शरीरमें फैला हुआ है, अतएव सकल शरीरगत-वेदनाका अनुभव हो जायगा।

खण्डन—ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि-गुण, गुणीको छोड़कर अन्यत्र स्वतन्त्ररूपसे नहीं जा सकता। यदि वह गुण, गुणीको छोड़कर अन्यत्र स्वतन्त्रतया जा सकता है तो उसे गुण ही नहीं कहना चाहिये। गुणीके परतन्त्र रहना ही गुणका स्वभाव है। यह सर्वानुभव सिद्ध है कि-घटके रूपादिगुण घट छोड़कर अन्यत्र स्वतन्त्र रूपसे नहीं जा सकते। दीपका प्रकाश (प्रभा) दीपका गुण नहीं है, किन्तु दीपसे पृथक् द्रव्य है। तेजके निविड़ावयवसमुदाय का नाम दीप है; और विरल अवयव-समुदाय का नाम प्रकाश है। अत एव महर्षि-कृष्ण-द्वैपायनजीने कहा है—

उपलभ्याप्सु चेद्गन्धं केचिद् ब्रूयुरनैपुणाः।
पृथिव्यामेव तं विद्यात् अपो वायुं च संश्रितम्॥

अर्थात् जल और वायुमें गन्धका अनुभव कर अज्ञानी लोग तत्त्वोंका विवेचन यथावत् न कर कहते हैं कि-वायु और जलमें भी गन्ध रहती है, परन्तु ऐसा नहीं मानना चाहिये, वायु एवं जलमें कदापि गन्ध नहीं रह सकती, गन्ध तो पृथिवीमें ही रहती है, क्योंकि-वह पृथिवीका ही अपना खास गुण है। वायु और जलमें जो गन्धकी प्रतीति होती है-उसमें कारण है-पार्थिव परमाणुओंका संमिश्रण। क्योंकि-पृथिवीके परमाणुओंका सम्बन्ध छोड़ कर केवल गन्ध कहीं भी नहीं रह सकती।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और जैसे अग्निका उष्णत्व एवं प्रकाश अपना खास स्वरूप है, तद्वत् जीवका चैतन्य (ज्ञान) भी अपना खास स्वरूप है। यदि जीवसे ज्ञान गुण पृथक् है उसका स्वरूप नहीं है, तो सभी जीवको 'मैं जड़ हूँ, ऐसी प्रतीति होनी चाहिये। अतः 'चैतन्य ही जीव है' ऐसा मानना युक्ति संगत है। जब चैतन्य, समस्त शरीर में व्याप्त है तो चैतन्य स्वरूप जीवको कदापि अणु नहीं मान सकते। और—

'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥'
(श्वे० ।५।९)

बालके अग्रभागका सौवें हिस्सा के भी सौवाँ-हिस्साके सदृश जीवात्मा-अतिअणु है, परन्तु वह अतिसूक्ष्मभी आत्मा उपाधि-विनिर्मुक्त होकर-अनन्त-भाव ब्रह्मभाव प्राप्त करनेके लिए समर्थ होता है।

इस श्रुतिमें जीवका बुद्ध्यादि-उपाधिके सम्बन्धसे औपाधिक-अणुत्व प्रतिपादन कर पारमार्थिक-आनन्त्य (देश-काल-वस्तु कृत परिच्छेद-रहितत्व) का प्रतिपादन किया है। अतएव इस श्रुतिसे बालाग्रशत-भागकी उपमा द्वारा जीवमें पारमार्थिक-अणुत्व नहीं मानना चाहिये। यदि जीवमें पारमार्थिक-अणुत्व माना जाय तो उसमें पारमार्थिक-अनन्तत्व कैसे रह सकेगा? क्योंकि-दो विरुद्ध धर्म पारमार्थिकरूपसे एकमें नहीं रह सकते, अतः अणुत्वको औपाधिक एवं अनन्तत्वको पारमार्थिक मानना ही-प्रशस्ततर है। या अणुत्व सूक्ष्मत्वका ही बोधक है। यदि आनन्त्यको औपाधिक माना जाय तो उपाधि दशामें यानी व्यवहार-दशामें उसका प्रतिभास होना चाहिये। प्रतिभास न होनेसे उसे औपाधिक नहीं मान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकते, व्यवहार-दशामें अणुत्वका प्रतिभास होता है कि मैं (अल्प) छोटासा हूँ, अतः अणुत्व ही औपाधिक है। इस विषयको श्रुति स्पष्टतया कहती है—

बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव, आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः।
(श्वे० ५।८)

बुद्धिके अणुत्व-गुणसे जीव आराग्रके समान अल्प है, और अपने वास्तविक-अनन्तत्वादि गुणसे जीव अवर है, यानी उससे वर (बड़ा-उत्तम) और कोई नहीं है, अर्थात् वही सबसे महान् एवं सर्वोत्तम है।

और गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि एवं वेदव्यास ये षड्दर्शनकार-महर्षि भी जीवको विभु व्यापक ही मानते हैं। प्रश्न-यदि जीवात्मा वस्तुतः विभु-व्यापक है, तो इसकी व्यापकताका भान सबको होना चाहिये, परन्तु किसीको नहीं होता, क्या कारण है?।

उत्तर—अविद्यादोषसे उसकी व्यापकताका महान्ताका भान नहीं होता। कोई छोटा-सा बालक अपने पितासे सूर्य कहाँ है? कैसा है? पूछता है, पिता उसे अंगुलि निर्देशकर कहता है कि-देख, सामने, इन दोंनों वृक्षोंके मध्यमें थाली या परातके आकार-जितना गोल-गोल-शुभ्रलालवर्णका तेजस्वी दीख रहा है, वह सूर्य-भगवान् है। पुत्र अत्यल्परूपसे सूर्य का दर्शनकर सन्तुष्ट हो जाता है। अब यहाँ विचारना चाहिये-कि-जितना दिखाया गया, या देखा गया, उतना ही क्या सूर्य है? कदापि नहीं? ज्योतिष-शास्त्र या साईन्स कहता है कि-सूर्य बहुत बडा है-इस पृथिवीकी अपेक्षा से भी हजारों गुणा बडा है-तब वह इतना बडा, इतना छोटा-सा क्यों दीखता है? इसका उत्तर है कि-सूर्य कई-करोडों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माईल यहाँसे दूर है, इस लिए दूरत्वदोषसे इतना बडा भी छोटा-सा दीखता है। विमानमें आरूढ होकर दो माईल-ऊंचेसे देखने पर बडी गंगा-यमुना नदी भी छोटा-सी बहती हुइ-पानीकी नाली जैसी दीखती हैं। इस प्रकार-विभु व्यापक आत्मा, अविद्या-दोषवशात् एवं देहादि-उपाधिके संयोगसे छोटासा दीखता है। परन्तु-देहादि-उपाधिको त्यागकर-विद्याकी प्रामाणिक-दृष्टिसे देखने पर उसकी महान्ताका एवं व्यापकताका तत्त्वदर्शी विद्वान् को अनुभव हो जाता है।

अब विस्तार-भयसे इस विषयको शंका-समाधान द्वारा विशेषरूपसे न लिखकर यहां ही समाप्त किया जाता है। विशेष जाननेकी अभिलाषावालोंको आकरग्रन्थ गुरु-मुखसे पढ़ने चाहिये। इस संक्षिप्त-समीक्षाके आलोचनसे बुद्धिमान् पाठकको निश्चय हो गया होगा कि-जीवात्मा विभु व्यापक है, वह कदापि अणु नहीं हो सकता।

(शांकर सिद्धान्त)

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' उस परमात्माने कामना की कि-मैं बहुत हो जाऊँ। अर्थात् मैं अनेकरूपोंसे उत्पन्न हो जाऊँ। यह ब्रह्मका बहुत होना पुत्रकी उत्पत्ति के समान अन्य -वस्तु विषयक नहीं है, किन्तु मायाके द्वारा अपनेमें अव्यक्त -रूपसे स्थित नामरूपोंकी अभिव्यक्ति होनी ही अनेक-रूप होना है। वे नाम-रूप, समस्त अवस्थाओंमें ब्रह्मसे अभिन्न देश और कालमें ही व्यक्त किये जाते हैं। आत्मासे भिन्न अनात्मभूत, तथा उससे भिन्न देश-कालमें रहनेवाली कोई भी सूक्ष्म, व्यवहित, दूरस्थ, अथवा भूत या भविष्यत्कालीन वस्तु परमार्थतः सिद्ध नहीं हो सकती है, अतः सम्पूर्ण अव-स्थाओंमें सम्बन्धित नाम और रूप, ब्रह्मसे ही आत्मवान्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(लब्धस्वरूप) हैं, परन्तु ब्रह्म तद्रूप नहीं है, उनसे ब्रह्मको पृथक् करने पर वे पृथक् रह ही नहीं सकते। इस प्रकार नाम-रूपका व्यक्त करना ही ब्रह्मका बहुत होना है, इसके सिवा और किसी भी प्रकारसे निरवयव-पूर्ण निर्विकार ब्रह्मका बहुत अथवा अल्प होना सम्भव नहीं है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इस श्रुतिमें बहुभवन संकल्प साक्षात् स्वस्वरूप विषयक नहीं है, किन्तु स्वस्वरूप से वस्तुतः भिन्न चित् (चेतन-जीव) अचित् (जड़-पृथिव्यादि) शरीर विषयक है। सर्गके आदिमें चित् अचित्-शरीर सूक्ष्म-यानी नामरूपका विभाग न होनेके कारण एकरूपसे अवस्थित था। बहुभवन संकल्पसे चित्-अचित्-शरीर विभक्त नामरूपवाला हो गया, यही 'बहु स्यां प्रजायेय' श्रुतिका तात्पर्य है।

(समीक्षा)

'अहं बहु स्यां' मैं बहुत हो जाऊँ, इस प्रकार परमात्माका बहुभवन संकल्प है। 'बहु स्यात' अपने स्वरूपसे भिन्न वह (चित्-अचित्-शरीर) बहुत हो जाय, ऐसा संकल्पका आकार न होने के कारण आचार्य शंकर स्वामी प्रतिपादित 'बहु स्यां' श्रुतिका तात्पर्यार्थ ही यथार्थ है। ब्रह्मसूत्रप्रतिपादित-कार्यकारणानन्यत्वन्यायसे नामरूपात्मक-जगत्का परमात्मासे भिन्नत्वाभाव सिद्ध करनेमें 'बहु स्यां' श्रुतिका तात्पर्य है। स्वविषयक बहुभवनके प्रतिपादनसे कार्य-कारणके वास्तविक-भेदका खण्डन हो जाता है।

जो वस्तु पूर्ण एवं निर्विकार है, निरवयव एवं कूटस्थ है, वह बहुरूपसे क्यों कैसे एवं कहां अभिव्यक्त होगी? इस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रश्नका सदुत्तर एकमात्र 'अघटघटनापटीयसी अनिर्वचनीया माया' ही है, अतः यह स्व-(ब्रह्मात्मा) विषयक बहुभवन माया द्वारा होनेके कारण मायामात्र ही है, पारमार्थिक नहीं है। पारमार्थिक तो एकत्वही है, बहुत्व नहीं।

इस विषयको स्पष्ट-प्रामाणिक समझनेके लिये यह निम्नलिखित ऋग्वेदसंहिताकी श्रुति द्रष्टव्य है—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।

मायाके द्वारा इन्द्र (परमात्मा) पुरु (बहु) रूपसे 'ईयते' यानी प्रतीत होता है, वास्तवमें वह बहुरूप नहीं हो जाता, इस श्रुतिमें विवर्तवाद ही स्पष्ट झलक रहा है। अतः 'बहु स्याम्' श्रुतिका अर्थ, आचार्यशंकर प्रतिपादित ही प्रामाणिक श्रुतिके अक्षरानुकूल, एवं यथार्थ है।

(शांकर-सिद्धान्त)

'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं
कुरुते अथ तस्य भयं भवति।'

(तै आ. २।७।१)

जब यह इस ब्रह्मतत्त्वमें थोड़ा-सा भी भेद करता है, तो इसे भय होता है।

[उत = अपि, अरं = अल्पं, अन्तरं = छिद्रं भेददर्शनम्]

जिस समय साधक, अपने एकमेवाद्वितीय सर्वभेद-विवर्जित स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, उस समय यह अपने स्वस्वरूपसे भिन्न न तो और कुछ देखता ही है, न कुछ सुनता है, न और कुछ जानता ही है।

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति
नान्यद्विजानाति स भूमा। (छां० ७।२४।१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात्—उस-अद्वय-ब्रह्ममें अन्य अन्यको नहीं देखता है, अन्य अन्यको नहीं सुनता है, एवं अन्य अन्यको नहीं जानता है, वह भूमा-अद्वय-ब्रह्म त्रिपुटी-भेदवर्जित है।

इस प्रकार अपने आत्मामें किसी प्रकारका अन्तर-भेद नहीं करता, उस समय ही यह अभयको प्राप्त होता है। किन्तु जिस समय अविद्याग्रस्त जीव-तिमिर-रोगीको दिखायी देनेवाले दूसरे चन्द्रमाके समान-अविद्या द्वारा कल्पित नाम-रूपात्मक पदार्थोंको देखता है, तथा इस ब्रह्मात्मामें थोड़ासा भी अन्तर अर्थात् भेददर्शन करता है, तब वह भय को प्राप्त होता है, क्योंकि-भेददर्शनही भयका कारण है। अन्यको ही अन्यसे भय हुआ करता है, आत्मासे आत्मा को भय होना सम्भव नहीं है।

'मुझसे भिन्न ईश्वर-और है, तथा मैं संसारी जीव और हूँ, तथा यह विश्व भी कुछ और है' इस प्रकार उस ब्रह्मात्मतत्त्वमें थोड़ासा भी अन्तर (भेददर्शन) करने वाले, एवं उस ब्रह्मतत्त्वको एक-अखण्डरूपसे न माननेवाले-भेद-ज्ञानीके लिये वह भेदरूपसे देखा गया ईश्वरसंज्ञक ब्रह्म ही भयरूप हो जाता है। अतः जिस पुरुषने एक, अभिन्न, आत्म-तत्त्वको नहीं जाना, वह विद्वान् (शास्त्रज्ञ) होने पर भी अविद्वान् (मूर्ख) ही है।

(रामानुज—सिद्धान्त)

'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयंभवति'

इस श्रुतिमें अन्तर शब्दका अर्थ है-अवकाश, विच्छेद। अर्थात् जो भक्त उस परमात्माकी उपासनामें थोड़ासा भी विच्छेद करता है, यानी उपासना छोड़कर अवकाश प्राप्त करता है, उसे भय होता है।

५

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस अर्थमें स्मृति भी प्रमाण है—

यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा च विक्रियाः॥

जिस मुहूर्तमें एवं क्षणमें वासुदेव-भगवान् का चिन्तन नहीं होता, यही हानी है, महान् त्रूटी है, यही भ्रान्ति है एवं यही विकार है। इसलिए एकक्षण भी वासुदेव-चिन्तन विना व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये।

(समीक्षा)

'यदा ह्येवैष' 'इस श्रुतिमें एतस्मिन्' (ब्रह्मणि) 'अन्तरं कुरुते' ऐसा निर्देश है, यहाँ उपासनाका नामनिशान भी नहीं है। अतः अन्तर शब्दका अन्वय स्वसन्निहित ब्रह्मबोधक 'एतस्मिन्' पदमें ही होना योग्य है अश्रुत उपासनामें नहीं। यदि कहो कि—

'एतस्मिन्नदृश्ये...प्रतिष्ठां विन्दते' (तै० २।७।१)

इस पूर्व-वाक्यमें पठित प्रतिष्ठा शब्दका अर्थ है—उपासना, अतः उसके साथ अन्तर शब्दका अन्वय हो जायगा, तो यह क्लिष्ट कल्पना है, एवं प्रकृत-हानि और अप्रकृतका ग्रहण है। क्योंकि-प्रथम तो पूर्ववाक्यका 'प्रतिष्ठा' शब्द सप्तम्यन्त ही नहीं है किन्तु द्वितीयान्त है, अतः उस द्वितीयान्त-प्रतिष्ठा-शब्दको सप्तम्यन्तमें परिणत करके इस द्वितीय-वाक्यमें रहे हुए अन्तर-शब्दके साथ जोड़नेके लिये इतनी दूरसे उसे यहाँ ले आना सिवाय क्लिष्ट कल्पनाके, और क्या हो सकता है? और 'एतस्मिन' इस सप्तम्यन्त पदका-जो अन्तर शब्दके साथ अन्वित है-तिरस्कार करना

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृतकी हानि है-जो एक बड़ा भारी दोष माना जाता है। और अप्रकृत 'प्रतिष्ठा' शब्दका विकृतरूपसे ग्रहण करके उसके साथ अन्वित करना अप्रकृतका ग्रहण है। यदि 'अन्तर' शब्द पूर्ववाक्यीय 'प्रतिष्ठा' शब्दके साथ अन्वित होता, तो स्वयं श्रुति 'एतस्मिन्' पदका उच्चारण ही न करती। अतः आचार्य रामानुज प्रतिपादित अर्थ, सिवाय खींचातानी एवं दुराग्रहके, यथार्थ नहीं है।

आचार्य शंकर प्रतिपादित पूर्वोक्त अर्थ ही-'द्वितीयाद्वै भयं भवति' (बृ० १ ४।२) (दूसरेसे-आत्मभिन्नसे ही भय होता है) 'भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्' (भा० ११।२।३७) (द्वैतमें अभिनिवेश करनेसे ही भय होता है) इत्यादि श्रुति-पुराणादि वाक्योंके अनुसार यथार्थ है। पूर्वोक्त वाक्योंमें द्वैत (भेद) दर्शनको ही भयका हेतु कहकर उसकी निन्दा की है, और 'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ० ४।४।२०) एकरूपसे ही उसका दर्शन करना चाहिये। 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।' (यजुर्वेद सं० ४०।७) एकत्वके दर्शन करने वाले को मोह क्या एवं शोक क्या ?। इत्यादि-श्रुतियोंमें एकत्व-दर्शन का विधान एवं प्रशंसा की है, और इसका फल शोकमोहकी निवृत्ति कही है। अतः अभेद-दर्शनही अभयप्रद एवं स्तुत्य है तथा भेददर्शन-भयप्रद एवं निन्द्य है।

(शांकर-सिद्धान्त)

'नेह नानास्ति किञ्चन' (कठ० २।१।१२) (बृ० ४।१९) इस अद्वितीय-ब्रह्मतत्त्वमें वस्तुतः नाना (द्वैत-प्रपञ्च), कुछ भी नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(रामानुज-सिद्धान्त)

'नेह नानास्ति किञ्चन' यह श्रुति ब्रह्मकार्य-जगत् (द्वैतप्रपञ्च) का निषेध नहीं कर सकती, क्योंकि-जगत्की कारणता ब्रह्ममें स्वयं श्रुतिने प्रतिपादन की है। अतः-

इस श्रुतिका आशय है-जिसका कारण एवं अन्तर्यामी ब्रह्म न हो, ऐसी ब्रह्मभिन्न कुछ भी वस्तु नहीं है। इस प्रकार 'यत्र हि द्वैतमिव भवति' (बृ० २।४।१४) 'य इह नानेव पश्यति' (बृ० ४।४।१९) इत्यादि श्रुतियोंका भी यही अभिप्राय समझना चाहिये।

(समीक्षा)

'नाना' शब्दका प्रसिद्ध अर्थ है-अनेक यानी एकसे भिन्न। एक है-केवल परमात्मा 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' (श्वे० ६।११) 'द्यावाभूमी जनयन्देव एकः' (श्वे० ३।३) 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ० १।३।२३) इत्यादि शास्त्र भी उस परमात्माको एकत्व से ही प्रतिपादन करते हैं। उस एक-परमात्मासे भिन्न है-यावत् अनेकात्मक द्वैतप्रपंच। अतः उसका ही 'इह' पदाभिधेय एकमेवाद्वितीय परमात्मामें 'नास्ति' पदसे निषेध किया गया है। द्वैतप्रपंचका निषेध जबतक न किया जाय, तबतक नानात्व-दर्शनका तिरस्कार नहीं हो सकता। और जबतक नानात्वदर्शनका तिरकार न हो, तब तक एकत्वदर्शन-जो परमपुरुषार्थ-मोक्षका साधन है-वह सिद्ध नहीं हो सकता। 'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ० ४।४।२०) 'एकत्वमनुपश्यतः'। (यजु० ४० ७) 'यो मां पश्यति सर्वत्र' (गीता० ६।३०) इत्यादि शास्त्रोंमें परमपुरुषार्थका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधनत्वेन एकत्व-दर्शनका स्पष्ट विधान किया है। अतः आचार्य श्रीशंकर-स्वामी प्रतिपादित अर्थ ही श्रद्धेय, श्रौताक्षरानुकूल एवं यथार्थ है।

'जिसका कारण एवं अन्तर्यामी ब्रह्म न हो, ऐसी ब्रह्मभिन्न कुछ भी वस्तु नहीं है' ऐसा नेह नानास्ति श्रुतिका अर्थ करना सिवाय खींचातानीके और कुछ नहीं है।

और 'नाना' शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त है-अवान्तर-भेद-मूलक-अनेकविधत्व। जैसे घटपटादिके भेदसे पृथिवी है नाना, अर्थात् घटपटादि-प्रतियोगिक-अवान्तर-भेद विशिष्ट-अनेकविधा पृथिवी है, तद्वत् अवान्तर भेदमूलक-जो लोक-प्रसिद्ध जगद्गत अनेक-विधत्व हैं-कर्मत्व, कर्तृत्व ज्ञेयत्व, ज्ञातृत्व आदि-आदि। उस अनेकविधत्वावच्छिन्न द्वैतका-'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति' (बृ० ४।४।१५) (जिस अज्ञानदशामें द्वैतकी तरह होता है, वहाँ अन्य अन्य को देखता है) इत्यादिसे अनुवाद करके 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्।' (बृ० ४।४।१५) इत्यादि श्रुति भी निषेध करती है।

और ब्रह्ममें जगत्की कारणता श्रुतिने इसलिये बोधन की है कि-यह विषयासक्त बहिर्मुख मनुष्य जगत्का कारण परमेश्वरको पहिचाने, न कि-जगत्को अबाध्यरूपसे जाने। और यह जगत्को अबाध्य (अनिषेध्य-सत्य) रूपसे कैसे जान सकता है? क्योंकि-जगत् क्या है? नाम और रूप। जो प्रत्यक्षतः परिवर्तनशील एवं दृष्टनष्ट हैं। अत एव इस नाम-रूपके मूलमें जो अनाद्यनन्त, भीतर-बाहर-सर्वत्र-अखण्डैकरस, सत्य, सनातन, अमृत, अभय, ब्रह्मतत्त्व है, उसका निर्णय करनेके लिये ही जगत्कारणत्ववाद श्रुतिने प्रतिपादित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया है। अत एव सृष्टि-वाक्योंका सृष्टिमें तात्पर्य नहीं है, किन्तु अध्यारोपापवाद-न्यायसे अद्वितीय परब्रह्मके बोधनमें ही तात्पर्य है। अत एव गौड़पादाचार्यजीने कहा है—

मृल्लोहविस्फुलिंगाद्यैः सृष्टि र्या चोदिताऽन्यथा।
उपायः सोऽवताराय, नास्ति भेदः कथञ्चन॥
(मा० का० ३।१५)

मृत्तिका, लोहा, विस्फुलिंग आदि-दृष्टान्तोंके द्वारा श्रुतियोंमें सृष्टिका अन्यथा-अन्यथारूपसे जो वर्णन किया है, उसका तात्पर्य है-अद्वैत-ब्रह्मावबोधका अवतरण, यही उपाय है, इसमें किसीभी प्रकारका भेद नहीं है।

और 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म।' (तै० ३।१।१) जिस परमात्मासे इन भूतोंकी उत्पत्ति होती है, उत्पन्न हुए भूत जिससे जीते रहते हैं, और अन्तमें इन-सबभूतोंका जिसमें विलय होजाता है, वह ब्रह्म है। इत्यादि सृष्टि-बोधक श्रुतियोंके आलोचनसे यह निश्चित होता है कि-यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मसे ही उत्पन्न होता है, ब्रह्ममें ही श्वास-प्रश्वास लेता है, और आखिर ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है, अतः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है, अर्थात् ब्रह्मसे अतिरिक्त यह जगत् स्वतन्त्रसत्तायुक्त-पारमार्थिक नहीं है।

और 'द्वैतमिव' 'नानेव' श्रुति घटक 'इवकार' स्पष्ट ही द्वैत-प्रपञ्चको कल्पित बतलाता हुआ तत्त्वज्ञानसे अज्ञान-प्रसूत-द्वैत-प्रपञ्चका अत्यन्ताभाव बोधन करता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(शाङ्कर-सिद्धान्त)

विवेकादि साधन-चतुष्टय की प्राप्ति के अनन्तर ब्रह्म-विचारका प्रारम्भ होता है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

कर्म-स्वरूप के ज्ञान के अनन्तर ब्रह्म-विचार का प्रारम्भ होता है।

(समीक्षा)

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस ब्रह्मसूत्र में अथ-शब्दसे साधन-चतुष्टय सम्पत्ति का ही ग्रहण हो सकता है, क्योंकि-'यच्च यस्मान्नियतं-पूर्वभावि तदेव तेनाक्षेप्तुं शक्यते न तु व्यभिचरितम्' जो जिससे नियतरूपसे पूर्वमें होनेकी योग्यता रखता है, वही उससे आक्षिप्त होता है, अतः उससे अनियत-व्यभिचारीका आक्षेप नहीं हो सकता, ब्रह्मविचार के प्रथम कर्मज्ञान व्यभिचारी है, क्योंकि-कर्मज्ञान के विना भी मोक्षकी अभिलाषा वाला ब्रह्मविचार करनेमें प्रवृत्त हो सकता है। जिसे कर्मज्ञान मात्र है, मोक्षकी अभिलाषा नहीं है, वह कभी भी मोक्ष-साधन ब्रह्म विचारमें प्रवृत नहीं होगा, यह प्रत्यक्ष है। अतः अन्वय-व्यतिरेक-न्याय से मोक्ष की अभिलाषा ही ब्रह्म-विचार का पूर्ववृत्त है। और उस मोक्षाभिलाषा का नाम ही मुमुक्षा है। जो साधन-चतुष्टय सम्पत्ति के अन्तर्गत मानी गई है। और यह भी अनुभव सिद्ध है कि-विवेक, वैराग्यशील ही एकान्त में बैठकर शमादि-साधन के बलसे गुरुकी प्रसन्नता प्राप्तकर ब्रह्म विचार में प्रवृत्त हो सकता है, जो विवेकादि साधन रहित है, और जिसकी बुद्धि विविध कर्म के फलों में आसक्त है, वह कर्मानुष्ठान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

छोड़कर, फलासक्ति के विरोधी ब्रह्म-विचारमें क्यों प्रवृत्त होगा? अतः साधन चतुष्टय-प्राप्ति के अनन्तर ही ब्रह्मविचार का प्रारम्भ होता है, यह आचार्य-शंकर का सिद्धान्त ही शास्त्र, युक्ति एवं अनुभव संगत है।

(शाङ्कर-सिद्धान्त)

पूर्वमीमांसा-शास्त्र और उत्तरमीमांसा-शास्त्र पृथक्-पृथक् शास्त्र हैं, अर्थात् इन दोनों का प्रतिपाद्य विषय भिन्न-भिन्न है, और दोनों का प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी भी भिन्न भिन्न हैं।

(रामानुज-सिद्धान्त)

पूर्व-मीमांसा और उत्तरमीमांसा मिलकर एक शास्त्र हैं। क्योंकि-दोनोंमें एक-मात्र धर्म ही प्रतिपाद्य विषय है। पूर्व मीमांसा में साध्य क्रियारूप धर्म प्रतिपाद्य है, और उत्तर-मीमांसामें सिद्ध-ब्रह्म-रूप धर्म प्रतिपाद्य है।

(समीक्षा)

पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा एक शास्त्र नहीं हो सकते, क्योंकि-दोनों के प्रणेता पृथक्-पृथक् हैं, पूर्व-मीमांसा के प्रणेता हैं, महर्षि-जैमिनि, और उत्तर-मीमांसा के प्रणेता हैं-महर्षि बादरायण (वेद-व्यास)। यदि दोनों एक शास्त्र होते, तो दोनों को एक ही महर्षि रच डालते, और दोनोंके प्रतिपाद्य विषय भी भिन्न-भिन्न हैं। पूर्व-मीमांसाका प्रतिपाद्य विषय है कर्म, और उत्तरमीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है-ज्ञान। कर्म और ज्ञान का विरोध तो तमः प्रकाशवत् प्रसिद्ध है। अतः आत्मैक्य-ज्ञानमें कर्मानुष्ठान का सम्भव नहीं हो सकता। और उत्तरमीमांसा का प्रतिपाद्य पुरुषार्थरूप प्रयोजन जैमिनि ऋषि को सम्मत नहीं है, क्योंकि-जैमिनि-ऋषि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का मत है—स्वर्ग की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ, जो उत्तर-मीमांसा के प्रयोजन से सर्वथा विरुद्ध है, उत्तरमीमांसा का प्रयोजन है—ब्रह्मात्मतत्त्व के अखण्डानन्द-साम्राज्य का अपरोक्ष साक्षात्कार।

अच्छा ! यह भी बतलाना आवश्यक है कि—दोनों मीमांसाओं में एक-शास्त्रत्व का प्रयोजक उभयानुगतरूप क्या है ? यदि कहो कि—विचारत्व है, तो उससे व्याकरण-न्यायादि शास्त्रोंकी भी एकशास्त्रता हो सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि—जैसे प्रतिपाद्य-विषय के भेद से व्याकरण न्यायादि शास्त्रोंका भेद है, वैसे दोनों मीमांसाओं का भी विषयभेद से भेद मानना युक्ति-संगत है। यदि कहो कि-एक शास्त्रत्व का प्रयोजक है-प्रतिपाद्यमान-धर्मत्व। तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि-ब्रह्ममें धर्मत्व नहीं हो सकता। स्वयं जैमिनि महर्षि भी ब्रह्ममें धर्मत्व नहीं मानते, वे तो धर्म का लक्षण बतलाते हैं 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।' अर्थात् विधि-वाक्यसे जो ज्ञापित हुआ अनुष्ठीयमान अर्थ है, वह धर्म है—जो ब्रह्ममें कदापि घट नहीं सकता।

अत एव विवरण-प्रमेय-संग्रहमें विद्यारण्य-स्वामी ने कहा है—

'यदि वेदान्तेषु विधिः स्यात्तर्ह्येकैव
षोडशलक्षणी धर्ममीमांसा प्रसज्येत ।'

अर्थात् वेदान्त (उपनिषद्-वाक्य) में चोदना (प्रेरणा) रूप विधि नहीं है, अतः जब विधि-विषयता वेदान्तमें नहीं है तो उसके प्रतिपाद्य ब्रह्ममें कैसे आ सकती है, अतः ब्रह्ममें धर्म का लक्षण किसी भी प्रकार से नहीं आसकता।

यदि कहो कि-एक शास्त्रत्व का प्रयोजक है—'मीमांसा'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा नाम। तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जैसे व्याकरण ऐसा नाम, ऐन्द्र, चान्द्र, सारस्वत, पाणिनीय, आदिमें समान होने पर भी उनका भेद माना जाता है, तद्वत् दोनों मीमांसाओं का भी भेद माना जा सकता है। और दोनों शास्त्रों को एक मानने पर छः दर्शन शास्त्र की प्रसिद्धि का विरोध होगा, प्रसिद्धि यह है—

"कपिलस्य कणादस्य गौतमस्य पतञ्जलेः।
व्यासस्य जैमिनेश्चापि, शास्त्राण्याहु षडेव हि॥"

कपिल का सांख्य-शास्त्र, कणादका वैशेषिक-शास्त्र, गौतम का न्याय शास्त्र, व्यास-बादरायण-मुनि का वेदान्त शास्त्र एवं जैमिनिका पूर्वमीमांसा शास्त्र इसप्रकार के छः शास्त्र कहे जाते हैं।'

अतः किसी भी प्रकार से पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा एक शास्त्र नहीं हो सकते।

(शांकर-सिद्धान्त)

तत्त्वमसि आदि महावाक्य के अनुसन्धान से आत्मसाक्षात्कार होता है, और उससे शीघ्र ही अविद्या की निवृत्ति होती है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

महावाक्य के विचार से उपासना दृढ़ होती है, और उससे परमात्मा प्रसन्न होता है।

(समीक्षा)

महावाक्य के अनुसन्धान से आत्मसाक्षात्कार ही होता है। भेद-घटित-उपासना, महावाक्य से कदापि सिद्ध नहीं होती। अतएव समस्त श्रुतिओंने ज्ञान से ही मोक्ष का प्रतिपादन किया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः' (श्वे० ४।१६)

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' (श्वे० ३।८)

देव-अन्तरात्मा को जानकर समस्त अविद्यादि बन्धनों से मुक्त हो जाता है।' 'इस प्रत्यक्-अभिन्न ब्रह्म को जानकर ही अविद्या-मृत्युका अतिक्रमण होता है।

इत्यादि। ज्ञान के विना अन्य साधन से मोक्ष नहीं होता। कहा है—

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० ३।८)

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।'

'मोक्ष प्राप्ति के लिये आत्मज्ञानको छोड़कर अन्य कोई स्वतन्त्र मार्ग नहीं है। ज्ञान के विना मुक्ति-लाभ नहीं मिल सकता।'

इन अधोलिखित-श्रुतिओं के पर्यालोचन से यह निर्णय होता है कि-आत्म-साक्षात्कार ही अविद्या-निवृत्तिरूप मुक्ति का साधन है।

'अनुविद्य विजानाति' (छां० ८।७।१)

'निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' (क० ३।१५)

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' (बृ० २।४।५)

'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' (बृ० ४।४।२१)

अखण्ड-ब्रह्माकारा-एकाग्र-बुद्धि-वृत्ति के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। ध्यान द्वारा उसका यथावत् साक्षात्कार करके वह मृत्यु के मुखसे मुक्त होता है। अरे मैत्रेयि! आत्मा का दर्शन अवश्य करना चाहिये। शास्त्र-गुरू द्वारा उस ब्रह्मको जानकर ब्रह्माकारा-ऋतम्भरा-प्रज्ञा सम्पादन करनी चाहिये।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा नाम। तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जैसे व्याकरण ऐसा नाम, ऐन्द्र, चान्द्र, सारस्वत, पाणिनीय, आदिमें समान होने पर भी उनका भेद माना जाता है, तद्वत् दोनों मीमांसाओं का भी भेद माना जा सकता है। और दोनों शास्त्रों को एक मानने पर छः दर्शन शास्त्र की प्रसिद्धि का विरोध होगा, प्रसिद्धि यह है—

"कपिलस्य कणादस्य गौतमस्य पतञ्जलेः।
व्यासस्य जैमिनेश्चापि, शास्त्राण्याहु षडेव हि॥"

कपिल का सांख्य-शास्त्र, कणादका वैशेषिक-शास्त्र, गौतम का न्याय शास्त्र, व्यास-बादरायण-मुनि का वेदान्त शास्त्र एवं जैमिनिका पूर्वमीमांसा शास्त्र इसप्रकार के छः शास्त्र कहे जाते हैं।'

अतः किसी भी प्रकार से पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा एक शास्त्र नहीं हो सकते।

(शांकर-सिद्धान्त)

तत्त्वमसि आदि महावाक्य के अनुसन्धान से आत्म-साक्षात्कार होता है, और उससे शीघ्र ही अविद्या की निवृत्ति होती है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

महावाक्य के विचार से उपासना दृढ़ होती है, और उससे परमात्मा प्रसन्न होता है।

(समीक्षा)

महावाक्य के अनुसन्धान से आत्मसाक्षात्कार ही होता है। भेद-घटित-उपासना, महावाक्य से कदापि सिद्ध नहीं होती। अतएव समस्त श्रुतिओंने ज्ञान से ही मोक्ष का प्रतिपादन किया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः' (श्वे० ४।१६)

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' (श्वे० ३।८)

देव-अन्तरात्मा को जानकर समस्त अविद्यादि बन्धनों से मुक्त हो जाता है।' 'इस प्रत्यक्-अभिन्न ब्रह्म को जानकर ही अविद्या-मृत्युका अतिक्रमण होता है।

इत्यादि। ज्ञान के विना अन्य साधन से मोक्ष नहीं होता। कहा है—

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (श्वे० ३।८)

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।'

'मोक्ष प्राप्ति के लिये आत्मज्ञानको छोड़कर अन्य कोई स्वतन्त्र मार्ग नहीं है। ज्ञान के विना मुक्ति-लाभ नहीं मिल सकता।'

इन अधोलिखित-श्रुतिओं के पर्यालोचन से यह निर्णय होता है कि-आत्म-साक्षात्कार ही अविद्या-निवृत्तिरूप मुक्ति का साधन है।

'अनुविद्य विजानाति' (छां० ८।७।१)

'निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' (क० ३।१५)

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' (बृ० २।४।५)

'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' (बृ० ४।४।२१)

अखण्ड-ब्रह्माकारा-एकाग्र-बुद्धि-वृत्ति के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। ध्यान द्वारा उसका यथावत् साक्षात्कार करके वह मृत्यु के मुखसे मुक्त होता है। अरे मैत्रेयि! आत्मा का दर्शन अवश्य करना चाहिये। शास्त्र-गुरू द्वारा उस ब्रह्मको जानकर ब्रह्माकारा-ऋतम्भरा-प्रज्ञा सम्पादन करनी चाहिये।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इत्यादि श्रुतिओं में 'विजानाति,' 'निचाय्य' 'द्रष्टव्यः' आदि-शब्दों से अविद्या-निवृत्ति के साधन आत्म-साक्षात्कार का प्रतिपादन किया है। आत्म-साक्षात्कार का साधन है- अनात्म-भावना का तिरस्कार पूर्वक अनवरत-आत्मभावना। कहा है—

'ॐ इत्येवात्मानं ध्यायत' (मुं० २।२।६)

'आत्मानमेव लोकमुपासीत' (बृ० १।४।१५)

'आत्मा वा अरे निदिध्यासितव्यः' (बृ० २।४।५)

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्' (ब्र० सू० ४।१।१)

'ओऽम्' इस मन्त्र का जप एवं अर्थ ज्ञान द्वारा आप लोग आत्माका सतत ध्यान करें। एकमात्र आत्मा ही लोक है—यानी साक्षात् अपरोक्ष सर्वानुभूत-सिद्ध-पदार्थ है, उसकी ही उपासना अर्थात् सतत गंगाप्रवाहवत् भावना करनी चाहिये। अरे मैत्रेयि! आत्मा का ही निदिध्यासन अर्थात् सतत ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मचिन्तनकी पुनः पुनः आवृत्ति-(अभ्यास) करनी चाहिये, क्योंकि-इसके लिये शास्त्रों में वारम्वार उपदेश दिया गया है।'

इस व्यास सूत्रने भी पूर्वोक्त ही अर्थ का प्रतिपादन किया है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥"

(मुं० २।२।८)

'उस परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की चिज्जड़-ग्रन्थि (आत्मा-अनात्मा का अध्यास) का भेदन हो जाता है।' समस्त-प्रमाण-प्रमेयादि-विषयक संशयों का

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

छेदन हो जाता है और समस्त-कर्मों का क्षय हो जाता है।

यह मुण्डक-श्रुति भी चिज्जड़-ग्रन्थि के विमोक्ष का साधन 'दृष्ट' पद से आत्मसाक्षात्कार ही बतलाती है। अतः आचार्य शंकर स्वामी का सिद्धान्त ही श्रुतियों के अनुसार है।

(शाङ्कर-सिद्धान्त)

सुख-दुःखातीत-आत्म साक्षात्कार हो जाने पर लौकिक शरीर रहने पर भी जीवन्मुक्ति सिद्ध होती है।

(रामानुज-सिद्धान्त)

लौकिक शरीर रहने पर सुख-दुःख का अनुभव अवश्य होगा, अतः कदापि जीवन्मुक्ति सिद्ध नहीं होगी।

(समीक्षा)

'तमेव विद्वानमृत इह भवति' (नृ० पू० १।६)

'उसको ही जानता हुआ यहाँ ही अमृत हो जाता है।'

इस श्रुतिमें 'इह' शब्दसे इस जीवित देहमें ब्रह्मतत्त्व का आत्मारूपसे सतत-अनुभवरूपा जीवन्मुक्ति प्रतिपादित है।

'अत्र ब्रह्म समश्नुते' (का० २।६।१४)

'यहाँ ही ब्रह्म-प्राप्त किया जाता है।' यह श्रुति भी 'अत्र' पद से जीवन-कालमें ही ब्रह्म साक्षात्कार का निरूपण करती हुई जीवन्मुक्ति का निर्देश करती है, अतः 'जीवन्मुक्ति कोइ वस्तु ही नहीं है,' यह कहना केवल हठाग्रह और श्रुतियों का तिरस्कार करना मात्र है। और

'विमुक्तश्च विमुच्यते' (कठ० उ० ५।१)

'विमुक्त हुआ विमुक्त होता है।'

यह श्रुति भी प्रथम पद से जीवन्मुक्ति तथा द्वितीय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पद से विदेहमुक्ति का निरूपण करती है। और 'सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव समना अमना इव सप्राणोऽप्राण इव' अर्थात् चक्षु, कर्ण, मन, प्राण आदि के सहित होता हुआ भी वह आत्मभाव से वस्तुतः चक्षुरादि से अतीत जीवन्मुक्त हो जाता है।' यह भी श्रुति लौकिक-चक्षुरादि-कार्यकरण समुदाय रहने पर भी सुखदुःखातीत जीवन्मुक्त-अवस्था का वर्णन करती है।

स्मृति-पुराणादियों में तो जीवन्मुक्ति का प्रचुर वर्णन है, यथा—

'ब्रह्मन्विदेहमुक्तस्य जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्।'
"नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥"

भगवान् श्रीरामने वसिष्ठ-महर्षि से पूछा-हे ब्रह्मन्! विदेहमुक्त का तथा जीवन्मुक्त का लक्षण कहिये। वसिष्ठ जी बोले-सुखावस्था में जिसकी मुख-प्रभा प्रफुल्लित नहीं होती तथा दुःखावस्थामें जिसकी मुख-प्रभा म्लान नहीं होती, किन्तु जिसकी स्थिति सर्वदा यथाप्राप्त में एकरस रहती है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।

"यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो, यस्य जाग्रन्न विद्यते।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते॥"

जो लौकिक-दृष्टिसे जाग्रत् अर्थात् व्यवहार-युक्त है, परन्तु स्वदृष्टि से सुषुप्त है, अर्थात् व्यवहार-रहित है। जिसे वासनरहित आत्मज्ञान है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं॥

"शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसार के समस्त संकल्प जिसके शान्त हो गये हैं, लौकिक दृष्टिसे संकल्पों से युक्त प्रतीत होने पर भी वस्तुतः जो संकल्प शून्य है। अत एव जो चित्तवाला होने पर भी चित्त-रहित है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

इसी ही जीवन्मुक्त-महापुरुष को गीतामें भगवान्ने 'स्थितप्रज्ञ' 'गुणातीत' एवं 'भगवद्भक्त' नाम से व्यवहृत किया है। तथा अन्य स्मृतियोंमें 'अतिवर्णाश्रमी' 'ब्राह्मण' आदि शब्दों से कहा है।

अतः पूर्वोक्त-प्रमाणों के पर्यालोचनसे जीवन्मुक्ति का सद्भाव सिद्ध होता है, इसलिये आचार्य-शङ्कर-स्वामी का सिद्धान्त ही शास्त्रानुकूल है।

(शांकर-सिद्धान्त)

प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर शरीर छूटने के बाद स्वस्वरूपमें पूर्णस्थिति ही विदेह-मुक्ति है, इसीका दूसरा नाम है विदेह-कैवल्य, एवं ब्रह्मनिर्वाण।

(रामानुज-सिद्धान्त)

प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर लौकिक शरीर छूट जाता है और साकार-परमात्मा के सदृश दिव्य शरीर प्राप्त होता है, यही विदेह-मुक्ति है।

(समीक्षा)

'यदल्पं तन्मर्त्यम्' इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार दिव्य देह प्राप्ति, विदेहमुक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि-दिव्य-देह भी तो अल्प (परिच्छिन्न) है, और जो अल्प होगा, वह अविनाशी कदापि नहीं हो सकता।

'अशरीरं वाव सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः'

(छां० ८।१२।१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह श्रुति शरीर-रहित मुक्ति को ही प्रियाप्रिय-इष्टानिष्ट सम्बन्ध रहित रूप से प्रतिपादन करती है। यदि मुक्तिमें भी उत्पत्तिवाला-शरीर रहेगा तो उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी, अतः मुक्त-सशरीर नहीं होता।

अतएव श्री भगवान्ने गीतामें मुक्ति का 'ब्रह्मनिर्वाण' नाम से वर्णन किया है। निर्वाण शब्द का अर्थ है-शरीराभाव। 'वाति गच्छतीति वाणं-शरीरम्' यह व्युत्पत्ति वाण की है, जिससे वाण का अर्थ शरीर होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्म-निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण-मृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥"

(गीता० ५।२४, २५, २६.)

जो अन्दर से ही दिव्यानन्द का अनुभव करता है, जिसने अपने आपमें ही आराम पाया है, जिसे भीतरमें ही स्वयं ज्योति मिल गयी है, वह योगी ब्रह्मरूप हुआ ब्रह्म-निर्वाण रूप मोक्ष प्राप्त करता है। जिन तत्त्व दर्शी ऋषियों की भेद बुद्धि दूर हो गयी है, जिनके समस्त रागद्वेषादि दोषरूप पाप नष्ट हो गये हैं, जो सभी प्राणियों के हित साधनोंमें तत्पर हैं, ऐसे संयमी, पवित्र, महानुभाव ब्रह्म-निर्वाणरूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं। काम-क्रोध रहित, संयमी, आत्मज्ञान-सम्पन्न, यति संन्यासी को अभितः प्राप्त अर्थात्

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वत्र, सर्वदा, स्वतः सिद्ध ब्रह्म-निर्वाणरूप मोक्ष मिल जाता है।

अतः आचार्य शङ्कर का सिद्धान्त ही शास्त्रानुकूल एवं युक्ति-संगत है।

इसप्रकार तत्त्वजिज्ञासुओं के लिये संक्षेप से दोनों आचार्यों का मत दिखलाकर किस आचार्य का मत श्रुति-स्मृति अनुकूल है, यह दिखलाने के लिये श्रुति-स्मृति वाक्यों का प्रदर्शन कर युक्ति एवं न्यायपूर्वक यह सिद्ध किया कि-आचार्य श्री शंकर स्वामी का सिद्धान्त ही परम श्रद्धेय एवं यथार्थ है।

हरिः ओ३म् तत्सत्

ब्रह्मात्माद्वैततत्त्वे श्रुतिशिखरगिरामागमानाञ्च निष्ठा,
तत्रैव ब्रह्मसूत्राण्यपि विमृशतां भान्ति विश्रान्तिमन्ति।
प्रत्नैराचार्यरत्नैरपि परिजगृहे शंकराद्यैस्तदेव,
तत्त्वं संचिन्तय त्वं परमसुखपदं प्राप्स्यसे ब्रह्मधाम॥

ब्रह्माभिन्न-आत्मा, जो अद्वैतस्वरूप है, उसके ही प्रतिपादनमें सकल-उपनिषदोंकी, एवं गीता आदि शास्त्रोंकी परायणता एवं पर्यवसानता देखी जाती है। तथा उसी ही तत्त्वमें महर्षि-बादरायण-प्रणीत ब्रह्मसूत्रोंकी भी विश्रान्ति विचारशील स्पष्टतः देखते हैं। अतएव उसी ही तत्त्वका प्राचीन आचार्य-रत्न श्रीशङ्कर भगवत्पाद आदि महापुरुषोंने परिग्रह किया है। अतः हे मुमुक्षो! तू उसी ही तत्त्वका श्रद्धासे एवं एकाग्रतासे सतत चिन्तन कर, इससे तू परम-सुखरूप ब्रह्मधामको यहां ही प्राप्त कर लेगा।

इति सिद्धान्तद्वय-समीक्षा समाप्ता।

६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'धर्म' 'शरण' 'एवं' 'एक' शब्दके तात्त्विक-अर्थ।

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-दार्शनिकसार्वभौमविद्या-वारिधि-न्यायमार्तण्ड-वेदान्तवागीश-ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी महाराज-महामण्डलेश्वर)

श्रीगोविन्द-पदारविन्द-मकरन्दास्वाद-शुद्धाशयाः,
संसाराम्बुधिमुत्तरन्ति सहसा पश्यन्ति पूर्णं महः।
वेदान्तैरवधारयन्ति परमं श्रेयः, त्यजन्ति भ्रमं,
द्वैतं स्वप्नसमं विदन्ति विमलां विन्दन्ति चानन्दताम्॥

श्रीगोविन्द-भगवान्‌के चरणकमलके भक्तिरसके आस्वादसे जिनके हृदय शुद्ध हो गये हैं, वे संसार-सागर तर जाते हैं, एवं शीघ्र ही पूर्ण-अद्वय-ब्रह्मज्योतिका दर्शन करते हैं। वेदान्तोंसे परम कल्याणका निश्चय करते हैं, एवं द्वैत-भ्रमका परित्याग करते हैं। द्वैत संसारको स्वप्न-सदृश मिथ्या समझते हैं तथा स्वस्वरूपकी विमल अखण्ड-आनन्दताका लाभ प्राप्त करते हैं।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥*

(गीता १८।६६)

यह गीताका प्रसिद्ध श्लोक है। विद्वानोंकी सम्मति है कि-इस श्लोकमें समस्त गीताके तात्पर्यका सङ्ग्रह है। अत

* हे अर्जुन! तू सर्व धर्मोंको त्याग कर केवल एक-अद्वय-मुझ सच्चिदानन्दघन-वासुदेव-परमात्माकी ही अनन्य-शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे समस्त पाप-संतापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एव इसका रहस्य गूढ़ है। भगवान्ने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' (गीता ३।३५) 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' (गी० २।४०) इत्यादि वचनोंसे स्वधर्मके पालनका महत्त्व एवं विशिष्ट फल बतलाया है। और 'धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि' (गी० ४।८) इस वचनसे यह सिद्ध किया है कि-उनका अवतार धर्मकी स्थापनाके लिए होता है, फिर वही भगवान् पूर्वोक्त-श्लोकमें धर्म परित्यागका उपदेश क्यों करते हैं? धर्म परित्यागका क्या रहस्य है? इत्यादि शङ्काएँ गीता स्वाध्यायीके हृदयमें हो सकती हैं। अत एव उन शङ्काओंका समाधान करनेके उद्देश्यसे धर्म-परित्याग एवं शरणागतिका अनेकार्थ रहस्य 'गीता-तत्त्वाङ्क' प्रेमियोंके समक्ष प्रगट किया जाता है—

'धर्म' शब्दके अर्थ।

'सर्वधर्मान्परित्यज्य' इस श्लोकमें 'धर्म' शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। मुख्य-सिद्धान्तसे अविरुद्ध विविध अर्थ सभीको माननीय होते हैं, अत एव कुछ अर्थ यहां यथा सम्भव क्रमशः दिखाये जा रहे हैं—

(१)

'धर्म' शब्दसे लोकोंमें प्रसिद्ध श्रौत-स्मार्त-धर्म, वैष्णव-धर्म, शैव-धर्म, हिन्दु-धर्म, यवन-धर्म, ईसाई-धर्म आदि सम्पूर्ण धर्मोंका ग्रहण होता है। भगवान् कहते हैं कि-हे भारत! इन सब धर्मोंके झंझट (अवान्तर-विभाग)को छोड़-कर तू मुझ एक, अद्वय परमात्माके ही शरणमें आ जा। अर्थात् जब तक मनुष्य अपने धर्ममें अविवेक-पूर्वक राग-अभिनिवेश और अन्य धर्मोंसे द्वेष-घृणा करता है, तब तक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसको परम-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती। एक, अद्वय प्रभुके वह शरण नहीं हो पाता। इस लिए मुमुक्षु-साधकोंको चाहिए कि-वे किसी भी संकुचित-धर्म-विशेषमें या सम्प्रदाय-विशेषमें अभिनिवेश न करें। 'यत्सत्यं तदुपासितव्यम्'-जो सत्य तत्त्व है, उसीकी उपासना करनी चाहिए। किसी एक धर्म विशेषकी अन्ध-श्रद्धासे दुम (पूंछ) पकड़ लेनेसे तत्त्व दृष्टिका लोप हो जाता है। साधक उदार भावनाके विशुद्ध प्रदेशमें प्रविष्ट नहीं हो पाता; उलटे घृणा, द्वेष एवं क्रोधसे उसका हृदय विवेक-शून्य हो जाता है। अतः 'सर्व धर्मोंको छोड़कर एक ही परमात्माके शरण हो जाना' इसका यह तात्पर्य है कि-एक ही लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिए अनेक साधक मुमुक्षु अपनी-अपनी सुविधा एवं रुचिके अनुसार अपने-अपने सुगम मार्गसे चलें, और गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाँय। जिस मार्गसे हम जाते हैं, उस मार्गसे यदि कोई दूसरा न जाय तो उससे द्वेष या घृणा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः तत्त्व एक ही है, हमारा आत्मा ही भगवान् है, हम, तुम एवं यह समस्त जगत् उससे भिन्न नहीं है। अतः विष्णु-पुराणमें कहा है—

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्,
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेद-मोहम्॥
(२।१६।२३)

समस्त चराचर प्राणियों का हृदय ही है, उसका पवित्र मन्दिर। उस सर्वगत घट-घट निवासी पूर्णात्मा परमेश्वरसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमें अनन्य-निष्कपट-प्रेम करना चाहिए। सब धर्मों में एक ही तत्त्व गुप्तरूप से छिपा हुआ है। इसी तात्त्विक-दृष्टि में निमग्न होना सब धर्मों का समन्वय है। यह तात्त्विक-दृष्टि किसी भी धर्म से विरुद्ध नहीं पडती, इसमें लेशमात्र भी विवाद की एवं विरोधकी कोई बात नहीं है। अत एव पूज्यवर गौडपादाचार्यजीने कहा है—

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते॥

(मा. का. अद्वै. ३।१७)

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्व-सत्त्व-सुखो हितः।
अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम्॥

(मा. का. अला. ४।२)

भेददर्शी द्वैतवादी लोग अपने भिन्न भिन्न संकुचित सिद्धान्तों की व्यवस्था करने के लिए दृढ अभिनिवेश पूर्वक एक दूसरे के मत का खण्डन करके राग-द्वेष आदि के कीचडमें फँसकर परस्पर विरोधी बन जाते हैं। परन्तु यह तात्त्विक-अद्वैत-सिद्धान्त किसीसे विरुद्ध नहीं पडता, क्योंकि इसका सर्वाभिन्न, सर्वात्मा एक, अद्वय, विशाल-तत्त्व ही लक्ष्य है। इसमें भेद-भावका नाम निशान भी नहीं है, पराये पनका विचार ही नहीं है, तेरे मेरे का अत्यन्ताभाव है। यह अद्वैत-सिद्धान्त अस्पर्शयोग है। इसमें राग-द्वेष का स्पर्श नहीं है। यह समस्त प्राणियों के लिये सुखकारक एवं हित-प्रद है। यह किसीसे भी विवाद एवं विरोध नहीं करता। ऐसा तात्त्विक-सिद्धान्त जिस शास्त्रने या जिस गुरुने उपदेश किया है, उसको मैं श्रद्धा भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी उदार-स्तुत्य-अद्वय-अनन्य भावना के विशालतम प्रदेश में प्रवेश करने से साधक को जब कल्याणकारिणी तत्त्वदृष्टि प्राप्त होती है। तब संकुचित-क्षेत्रवाले-धर्मों से उसकी आस्था उठ जाती है। वह एक ही आत्म-स्वरूपको प्रेममयी-सद्भावमयी दृष्टिसे विना भेदभाव सब को देखता है। यही गीताके कथनानुसार सब धर्मों को छोड देना है।

(२)

धर्म शब्दसे निषिद्ध धर्मोंका ही ग्रहण होता है, विहित धर्मोंका ग्रहण नहीं होता। गीता में भगवान्ने कहा है—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

(१८।५)

यज्ञ दान और तपरूप विहित कर्म त्याज्य नहीं हैं, किन्तु कर्तव्य हैं। क्यों कि-यज्ञ, दान और तप महान् विद्वानों को भी पवित्र करते हैं।

इसलिए 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य' का दूसरा अर्थ यह हुआ कि-निषिद्ध-धर्मोंका मन, वाणी एवं शरीर से परित्याग कर के एक मात्र भगवान् के शरणमें हो जाना चाहिए। शास्त्रमें मानसिक, वाचिक और कायिक निषिद्ध कर्म संक्षेप में दस प्रकार के कहे गये हैं। मानसिक-निषिद्ध कर्म तीन प्रकार के होते हैं—

(१) बुरी नियत से दूसरे के धनको लेनेका निश्चय करना, (२) मनसे दूसरोंका अनिष्ट-चिन्तन करना, (३) मिथ्या तुच्छ वस्तुओं में अत्यन्त आसक्ति करना। या शास्त्र विरुद्ध मिथ्या-पाखण्ड-युक्त मतवादोंमें अभिनिवेश रखना। वाचिक-निषिद्ध कर्म चार प्रकार के हैं—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१) कठोर भाषण करना (२) झूठ बोलना, (३) चुगली-करना, (४) पागल की तरह व्यर्थ अंडबंड बकना।

कायिक निषिद्ध कर्म तीन प्रकारके हैं—

(१) दूसरे के पदार्थको अन्यायसे ले लेना, (२) स्वादके लिए निर्दोष प्राणियोंका अशास्त्रीय-रीतिसे वध करना, (३) परदाराका उपभोग करना इत्यादि—।

जब तक मनुष्य इन निषिद्ध कर्मोंका परित्याग न करेगा, तब तक वह पावनतम-भगवच्छरणागतिका अधिकारी नहीं हो सकता। निषिद्ध-कर्मोंके त्यागसे ही मनुष्य शुद्ध बनकर भगवान् की शरणमें जाने का अधिकारी होता है।

(३)

'धर्म' शब्द से वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, साधारण-धर्म और असाधारण-धर्म इत्यादि—

नित्य-नैमित्तिक काम्य-प्रायश्चितरूप विहित-धर्मोंका भी ग्रहण होता है। 'त्यज धर्ममधर्मञ्च' इस स्मृति-वचनके अनुसार अधर्म के साथ धर्मका भी ग्रहण है। अस्तु, इससे यह तात्पर्य निकला कि-विहित-अविहित सब धर्मोंको छोड़-कर, सब धर्मोंके अधिष्ठाता एकमात्र शुद्धानन्दाद्वय-परमात्माकी शरणमें जाना चाहिए। 'इन सब विहित-धर्मोंका अनुष्ठान ईश्वरेच्छा से हो अथवा न हो' इसकी चिन्ता नहीं; भगवान् के एकमात्र पावन-अनुग्रहसे ही मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। 'सर्वतोभावेन' मन, वचन एवं कर्म (देह) से सर्वात्मा-ईश्वर की शरणमें होना ही मेरा परम कर्तव्य है, ईश्वर-शरण ही सब धर्मोंका मूल है। प्रतिक्षण परम आनन्द-घन भगवान्का चिन्तन करना ही परम धर्म है, इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है।'—ऐसा दृढ़ निश्चय कर संसारके सब वर्णादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्मोंकी चिन्ता या वर्णादि-धर्मोंके अभिमानसे मुक्त होना ही सब धर्मोंका त्याग करना है। यह आचार्यप्रवर श्री मधुसूदन स्वामीका सिद्धान्त है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि-भगवच्छरणार्थी यदि संध्यादि-विहित-धर्मोंका परित्याग करेगा तो उसको महान् पापरूप प्रत्यवाय होगा। शास्त्रोंमें भी कहा है—

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥
अकुर्वन् विहितं कर्म, निन्दितं च समाचरन्।
प्रसज्जश्चेन्द्रियार्थेषु, नरः पतनमृच्छति॥ (मनु—स्मृति)

अर्थात् जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) प्रातः एवं सायं सन्ध्या की उपासना नहीं करता, वह शूद्र के तुल्य-पापमय हो जाता है। द्विजातिके कर्मोंमें उसका अधिकार नहीं रहता। जो विहित कर्मोंको नहीं करता, इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होकर निषिद्ध कर्मोंको करता है, वह पापकी पोटली बाँधकर नरकादि-निम्नस्थानोंमें गिरता है। अतः विहित कर्मोंका त्याग-श्रेयस्कर नहीं है।

इसका उत्तर यह है कि-सन्ध्यादि नित्य-नैमित्तिक विहित-धर्मोंके त्याग मात्रसे प्रत्यवाय नहीं लगता, क्योंकि-विहित-कर्मोंका न करना अभाव है। अभावसे भावरूप पापकी उत्पत्ति नहीं होती, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। किन्तु बहिर्मुख मनुष्य विहित-कर्मोंका परित्याग कर कुछ न कुछ अवश्य करेगा ही, भगवच्चिन्तन तो बहिर्मुख-व्यक्तिसे हो ही नहीं सकता। जैसे गीतामें कहा है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (३।४)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'कर्म को न करके कोई भी एक क्षण भी बेकार नहीं रह सकता' यह प्राणिमात्रका प्राकृतिक-नियम है। अर्थात् विहित कर्मोंको छोड़ देने पर बहिर्मुख मनुष्य निषिद्ध कर्मोंको अवश्य करेगा। फलतः निषिद्ध-कर्मोंके सेवनसे पाप की उत्पत्ति अवश्य होगी, अत एव कहा जाता है कि-विहित कर्मोंके न करने से पाप होता है। इसका मतलब यह है कि-विहित कर्मोंका न करना, निषिद्ध कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा पापका ज्ञापक है। अतएव पूर्वश्लोक घटक 'अकुर्वन्' इस पदमें शतृ-प्रत्यय 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इस पाणिनीय सूत्रसे ज्ञापकत्वरूप लक्षण के अर्थमें समझना चाहिए।

प्रकृतमें भगवच्छरणार्थी विहित-धर्मोंका त्यागकर एकाग्रता एवं अनन्य-भक्ति से सकल-धर्म-शिरोमणिरूप भगवान् के चिन्तनमें तत्पर होता है। निषिद्ध कर्म कभी करता ही नहीं, उनको तो वह पहलेसे ही छोड़ देता है। इसलिए उसके द्वारा पापकी उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि भगवच्चिन्तन से महान् पुण्यकी ही उत्पत्ति होती है। यदि वह भगवच्चिन्तनको भी छोड़ देगा तो वह भगवच्छरणार्थी ही न रहेगा, बहिर्मुख हो जायगा, उभयभ्रष्ट कहलायगा। अतः विहित-कर्मों का त्यागकर उसके स्थानमें भगवच्चिन्तन-करनेवाला पुरुष प्रत्यवायी नहीं होता। यद्यपि भगवत्प्रेमी के लिए उचित है कि-वह जहाँ तक बने, वहाँ तक लोक संग्रहार्थ विहितकर्मोंको अवश्य करता रहे, परन्तु भगवच्चिन्तनमें विशेष प्रेमोद्रेक होने पर परवशताकी अवस्थामें विहितकर्म आप-से-आप छूट जाया करते हैं। अतएव कहा है—

न कर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभिस्त्यज्यते ह्यसौ।

योगी कर्मोंको न त्यागे; यदि कर्म उसको त्याग दें तो उसमें कोई चिन्ताकी बात नहीं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(४)

'धर्म' शब्दसे धर्मके कारण-भूत-कर्मका भी ग्रहण होता है। अर्थात् अनन्य-भक्तको लौकिक-वैदिक-सर्व कर्मोंका त्याग कर देना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग किये विना मनुष्य निवृत्ति परायण कभी नहीं होता। वह ईश्वर-चिन्तन में अहर्निश नहीं लगा रह सकता। अतः लौकिक-और वैदिक यावत् कर्मोंके संन्यास की आवश्यकता है। सम्पूर्ण-कर्मोंको त्यागकर-विरक्त, निःस्पृह संन्यासी बनकर 'सर्वात्मा अद्वय अच्युत भगवान् ही मैं हूँ। मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है'। इसप्रकार सदा सर्वदा पावन-भावना करना एवं दृढ़-धारणा रखना ही सर्व धर्मोंका परित्याग है। यह भाष्यकार आचार्य श्रीशङ्कर भगवत्पादका सिद्धान्त है।

(५)

'धर्म' पदसे देह-धर्म, इन्द्रिय-धर्म, प्राण-धर्म, मनो-धर्म, बुद्धिधर्म, आदि धर्मोंका भी ग्रहण होता है, इन सब धर्मोंका परित्याग कर भगवान्रूप आत्माकी शरणमें होना चाहिए। ब्राह्मणत्वादि-जाति, देवदत्तादिनाम, पितृत्व-पुत्रत्वादि सम्बन्ध, शुक्लत्वादि-रूप एवं जन्म लेना, मरना, चलना, फिरना, बैठना आदि देह धर्म हैं। देखना, सूंघना, सुनना स्वादलेना, स्पर्शकरना, लेना-देना आदि इन्द्रियोंके धर्म हैं। क्षुधापिपासा आदि प्राणोंके धर्म हैं। सुख-दुःख, सङ्कल्प-विकल्प आदि मनके धर्म हैं। कर्तृत्व, भोक्तृत्व और निश्चय करना बुद्धिके धर्म हैं। 'ये सबके सब धर्म देहादि के हैं'। देहादिसे अति-रिक्त साक्षी चिदात्मारूप मुझमें ये धर्म नहीं हो सकते। मैं चिदात्मा इन सब धर्मोंसे रहित हूँ, असङ्ग हूँ, निर्लेप हूँ, निर्वि-कार हूँ। ऐसा दृढ निश्चय करके देहादिके धर्मोंकी उपेक्षा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करना ही सब धर्मोंका परित्याग है। अतएव आचार्य श्रीशङ्कर भगवत्पादने कहा है—

न त्वं देहो नेन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः।
विकारित्वाद्विनाशित्वाद् दृश्यत्वाच्च घटो यथा॥
विशुद्धं केवलं ज्ञानं निर्विशेषं निरञ्जनम्।
यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्यद्वयं परम्॥
(सदाचारानुसन्धानम्)

हे मुमुक्षो! जैसे विकारी, विनाशी एवं दृश्य होने से घटरूप तू नहीं है, वैसे विकारी, विनाशी एवं दृश्य होने से तू देह, इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धिरूप भी नहीं हो सकता। तू अविकारी, अविनाशी एवं द्रष्टा है। जो विशुद्ध केवल, निर्विशेष, निरञ्जन, परमानन्द स्वरूप, एक, अद्वय, विज्ञानघन परतत्त्व है, वही तू है। ऐसा निश्चयकर इन देहादिकोंके तुच्छ धर्मोंको अपनेमें मत मान।

(६)

अथवा 'ध्रियते आश्रितो भवतीति धर्मः' इस व्युत्पत्ति से 'धर्म' शब्द दृश्य, परिच्छिन्न, जड़रूप अज्ञान एवं अज्ञान-कार्य समस्त संसाररूप अनात्मवर्गको बतलाता है। भगवान्‌रूप आत्माके अतिरिक्त यावत् कल्पित-पदार्थोंका ग्रहण करने से इस पक्षमें 'सर्व धर्मान्' इस वाक्य का 'सर्व' शब्द असङ्कुचित वृत्ति होकर चरितार्थ होता है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

अहमात्मा गुडाकेश! सर्वभूताशयस्थितः। (१०।२०)
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!॥ (१३।२)
'वासुदेवः सर्वमिति' (७।१९)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् हे गुडाकेश अर्जुन! सर्व चराचर-भूतोंके हृदय में साक्षी रूपसे वर्तमान आत्मा मैं ही हूँ। हे भारत! शरीर रूपी सब क्षेत्रोंमें स्थित रहनेवाला क्षेत्रज्ञ, आत्मा मैं ही हूँ। वासुदेव ही सब कुछ है, अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा तुम निश्चय करो।

आत्मा के अतिरिक्त सम्पूर्ण नामरूपात्मक वस्तुओंको मिथ्या-कल्पित रूपसे निश्चय करना ही सर्व धर्मोंको छोड़ना है। आचार्य श्रीशङ्कर स्वामीने भी कहा है—

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्।
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्ति-कारणम्॥
(विवेक-चूडामणि)

अर्थात् तमाम दुःखोंके कारण महान् पापमय-अनात्म चिन्तनका त्याग करो और मुक्ति के कारण आनन्द-स्वरूप आत्माका ही सर्वदा चिन्तन करो।

इस प्रकार 'धर्म' शब्दके और भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। गीताकी संस्कृत-टीकाओंमें तथा महात्माओंके अनुभवमें इन अर्थोंका सङ्ग्रह है। विस्तार-भयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं करता हूँ।

'शरण' शब्द के अर्थ।

आचार्यप्रवर श्री मधुसूदन स्वामीने गीतोक्त 'शरण' शब्दके तीन अर्थ किये हैं। जैसे—

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः॥

अधिकारी भेद एवं साधनाभ्यासके तारतम्यसे भगवच्छरणागति तीन प्रकारकी सिद्ध होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१) 'तस्यैवाहम्' उस प्रभुका ही मैं हूँ।
(२) 'ममैवासौ' वह प्रभु मेरा ही है।
(३) 'स एवाहम्' वह प्रभु मैं ही हूँ।

प्रथम—शरणागति मृदु है। आचार्य भगवान् श्री शङ्कर स्वामीने उसका स्वरूप इस प्रकार बताया है।

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥
(षट्पदी—स्तोत्रम्)

जैसे जलरूपसे समुद्र और तरङ्ग दोनों एक हैं, जल दृष्टिसे दोनोंमें भेद नहीं है, परन्तु समुद्र एवं तरङ्गकी दृष्टि से दोनोंका कल्पित भेद है—वैसे सच्चिदानन्दरूप-दृष्टिसे जीव और ईश्वर एक ही हैं। दोनोंमें लेशमात्र भी भेद नहीं है। परन्तु समष्टि एवं व्यष्टिरूप-उपाधिसे अर्थात् जीवत्व-ईश्वरत्वकी दृष्टिसे दोनोंमें काल्पनिक-भेद है। जैसे समुद्रकी तरङ्गें कही जातीं हैं, परन्तु तरङ्गोंका समुद्र नहीं कहा जाता। समुद्रके आधीन तरङ्गें होती हैं। तरङ्गों के आधीन समुद्र नहीं होता। समुद्र के गुण, कर्म, शक्ति अनन्त है। तरङ्ग के गुण आदि अनन्त नहीं, अपितु स्वल्प हैं। उसी प्रकार ईश्वर के जीव कहे जाते हैं, जीवोंका ईश्वर नहीं कहा जाता। ईश्वर के अधीन जीव हैं, जीवके वशमें ईश्वर नहीं। ईश्वर के गुण, कर्म, शक्ति, ज्ञान, ऐश्वर्यादि अनन्त हैं, जीव के गुण आदि अनन्त नहीं, अपितु स्वल्प हैं। अतएव 'मैं ईश्वरका ही हूँ, परमेश्वरका दास हूँ, या मित्र हूँ, अथवा पुत्र हूँ, ईश्वरके ही शरणागत हूँ' इस प्रकार के भाव का नाम मृदु भगवत्-शरणागति है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वितीय— शरणागति मध्यम है। उसका स्वरूप भक्त प्रवर बिल्वमङ्गलजीके आदर्श-चरित्रसे स्पष्ट होता है। किसी समय सूरदास-बिल्वमंगलजी वृन्दावन जा रहे थे। मार्गमें बड़े-बड़े खड्डे और टूटे फूटे कूप पड़ते थे। परन्तु बिल्वमङ्गलजी पक्के भक्त थे। एकमात्र आराध्य-प्रभु पर ही उनका विश्वास था। वे निरन्तर अपने प्यारे-प्रभु का ही स्मरण करते चले जा रहे थे। यकायक एक कूप सामने आगया। वे चक्षु विहीन थे ही, एक कदम भी और आगे बढ़ते तो उस कूपमें गिर जाते; परन्तु अन्तर्यामी प्रभु जिनके रक्षक हों; वे भला कूपमें कैसे गिर सकते थे? शीघ्र ही भक्त-वत्सल-प्रभु एक बालक का रूप धारण करके प्रगट हो गये, उन्होंने मधुर वाणीसे कुछ कहकर बिल्वमंगलका हाथ पकड़ा और इस प्रकार उन्हें-कूपमें गिरने से बचा लिया। इतना ही नहीं, भगवान् मीठी-मीठी बातें करते हुये बिल्वमङ्गलजी को वृन्दावनकी ओर ले जाने लगे। इधर बिल्वमङ्गलजी को निश्चय हो गया-कि यह बालक साधारण नहीं है। मनुष्यका ऐसा दिव्य-भाषण एवं स्पर्श कदापि नहीं हो सकता; ये साक्षात् भगवान् ही हैं। थोड़ी देर बाद जब कठिन मार्ग समाप्त हो गया, तब बालकरूप भगवान् जाने के लिये कहने लगे, बिल्वमङ्गलजी उनको रोकने के लिए अनेक प्रकारके अनुनय-विनय करने लगे। परन्तु बालकरूप भगवान् जबर्दस्तीसे हाथ छुड़ाकर चल दिए, तब बिल्वमङ्गलजीने कहा—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात् कृष्ण ! किमद्भुतम् ।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥

हे प्यारे ! कृष्ण ! आप बलपूर्वक मेरा हाथ छुड़ाकर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चल दिये हैं; यह आपका अद्भुत पराक्रम नहीं माना जा सकता। आपका पराक्रम तो मैं तब मान सकता हूँ, जब आप मेरे हृदय से निकल कर अलग हो जाँय। अर्थात् 'आप तो सर्वदा मेरे ही हैं'। आपकी श्याम-सुन्दर मुनिमनोहारिणी मनोहर साकार-मूर्ति मेरे हृदय से कभी भी नहीं निकल सकती' यह विल्वमंगलजीका प्रेमपूर्ण-दृढ़-अभिनिवेश था।

इसी प्रकार न्यायाचार्य श्रीउदयनाचार्यजीने भी प्रेमावेश में 'प्रभु मेरा है' ऐसा भाव प्रदर्शित किया था। एक समय उदयनाचार्यजी जगन्नाथ भगवान्‌का दर्शन करने के लिए पुरी गये थे। परन्तु वहाँ मन्दिर के फाटक बन्द थे, अतएव वे भगवान् को उलाहना देने लगे। उन्होंने कहा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्तसे।

उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः॥

'हे प्यारे भगवन्! इस समय तुम ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो रहे हो, मेरी अवहेलना कर मुझे दर्शन नहीं देते। परन्तु ख्याल रखना कि-जब नास्तिक-बौद्धादि-लोग आपका खण्डन करने आयेंगे, तब मेरे ही अधीन आपकी स्थिति होगी। क्योंकि-इस समय इन नास्तिकोंका शास्त्रार्थ के द्वारा मुखमर्दन कर आपकी सिद्धि करनेवाला एकमात्र मैं ही हूँ'।

भक्त-उदयनाचार्यके इस प्रकारके प्रेमभरे वचनोंको सुनकर भगवान् के मन्दिरके द्वार आप-ही आप खुल गये। भगवान् ने मनोहर दर्शन देकर आचार्यजी को कृतार्थ किया। उदयनाचार्यजी की पुनीत-भक्तिका परिचय उनके इन श्लोकोंसे मिलता है—

अस्माकं तु निसर्ग-सुन्दर! चिराच्चेतो निमग्नं त्वयी-

त्यद्धाऽऽनन्दनिधे! तथापि तरलं नाद्यापि सन्तृप्यते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तन्नाथ! त्वरितं विधेहि करुणां येन त्वदेकात्मतां—
याते चेतसि नाप्नवाम शतशो याम्याः पुनर्यातनाः॥
कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात् संहरन्
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यः कुर्वन् जगत्क्रीडति॥
तं देव निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभावं भवं,
विश्वासैकभुवं शिवं प्रतिनमन् भूयासमन्तेऽपि॥
—(न्याय-कुसुमाञ्जलि)

हे निसर्गसुन्दर! हे आनन्दनिधे! परमात्मन्! मेरा चित्त आपमें दीर्घकालसे आसक्त हो रहा है; परन्तु यह चञ्चल चित्त आपके दर्शन विना सन्तृप्त नहीं होता। इसलिए हे नाथ! आप ऐसी करुणा कीजिए कि-आपमें यह चित्त तन्मय हो जाय, जिससे शतशः यमयातनाओंको मैं न प्राप्त होऊँ। जो भगवान् आकाशादि-कार्य-द्रव्य समुदायको बना-बनाकर संहार करते हैं, पुनः अपनी माया के द्वारा इन्द्रजालकी तरह इस जगत् की रचना करके-क्रीडा करते हैं-उन विश्वसनीय, संहारके कारण, प्रतिबन्धरहित-इच्छा-प्रभाववाले कल्याणमय परमात्माको मैं शरीरान्तके समय भी प्रणाम करूँ।'

तृतीया-भगवच्छरणागति विष्णु-पुराणमें ऐसी कही है—

सकलमिदमहं च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इतिमतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्॥
(३।७।३२)

यमराज अपने भटोंसे कहते हैं कि-'हे भटो! यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्व वासुदेवरूप ही है। 'मैं वासुदेव हूँ' ऐसी जिसकी भावना दृढ़ हो गयी है, उसको तुम लोग दूर से ही छोड़ देना। वहाँ तुम लोगोंका जाना ठीक न होगा।' अस्तु 'मैं तथा सब कुछ वासुदेव ही है' इस प्रकार की अचल भावना उत्तम-शरणागति है। भागवतमें भी कहा है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
(११।२।४५)

सर्वचराचरभूतोंमें जो एकमात्र भगवान्‌रूप अधिष्ठान अपनी आत्माको ही-देखता है और आत्मारूप भगवान् में सम्पूर्ण-भूतोंको कल्पित देखता है, वही सर्वोत्तम-वैष्णव भागवत है। यानी उसीकी शरणागति सर्वोत्तम है।

भगवच्छरणागति एक महान् धर्म है, जो वेदादि सकल शास्त्रोंमें प्रतिपादित है, उसके लिए गौण-धर्मोंके परित्यागकी आवश्यकता है। अतएव 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' इत्यादि वचनोंके साथ इस प्रकार के धर्म-परित्यागका कुछ विरोध नहीं हो सकता।

मामेकम्।

'मां' पदके साथ 'एक' पद विशेषणरूपसे जोडकर श्रीभगवान् यह सूचित करते हैं-कि सर्वत्र मैं एक ही हूँ। समस्त-विश्वका नियन्ता परमेश्वर मैं एक ही हूँ, तथा निखिल-भूत-प्राणियोंका अन्तरात्मा भी मैं एक ही हूँ। इस प्रकार इस एक पदसे भगवान् एकेश्वरवाद तथा एकात्मवादका प्रतिपादन करते हैं। अर्थात्—अनेक नाम एवं अनेक रूप विग्रह होने पर भी सर्वेश्वर भगवान् एक ही है, एकाधिक नहीं, तथा विविध-विभक्त जड-चेतन शरीरादि-पदार्थोंमें भी अविभक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक ही अन्तरात्मा है, अनेक-विभक्त नहीं। इस तात्पर्यार्थको द्योतन करने के लिए ही एक पदका प्रयोग किया है, अन्यथा 'मां शरणं व्रज' (मेरी-शरणमें आ) इतना कहना ही पर्याप्त था, एक पद जोडनेकी क्या आवश्यकता थी? अतः एक पद जोडकर श्रीभगवान्-अनेकतामें एकता का भाव तथा भेदमें अभेद-भाव रखने का आदेश दे रहे हैं। यही अध्यात्म-प्राण भारतीय संस्कृतिका स्तुत्य ध्येय है। अतएव एक भगवान्में समस्त विश्वको तथा समस्त विश्वमें एक-भगवान्को देखने की महनीय-समुदार भावनाने ही अभी तक भारतीय-संस्कृति को व्यापक, स्थिर एवं प्रशंसनीय वनाये रक्खा है। इस प्रकार श्रीभगवान्ने छठा अध्यायमें भी खास रूपसे यही उपदेश दिया है कि—'सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।' (६।३१) अर्थात्-सर्वभूतोंमें अन्तरात्मारूपसे अवस्थित-मुझ भगवान्का जो भजन करता है, वह योगी है। परन्तु वह योगी मेरा किस प्रकार भजन करता है? क्योंकि-भजन भोजन की तरह भावसे ही होता है, भाव विना न भजनका एवं न भोजनका रसास्वाद-सुख मिलता है। इसलिये श्रीभगवान्-भजन की सफलताके लिए 'एकत्वमास्थित' का उपदेश देते हैं। एक पदके साथ लगा हुआ 'त्व' यह प्रत्यय, व्याकरण-शास्त्रमें 'तस्य भावस्त्वतलौ' इस सूत्रसे भाव-अर्थमें उपदिष्ट है। अतः 'एकत्व' का अर्थ हुआ एक-भाव। अर्थात्-शिव-विष्णु आदि समस्त-देवोंमें अनेक भाव नहीं किन्तु जो एक-भाव रखता है; एवं समस्त भूतप्राणियोंमें भी एक-भाव रखता है, वही मुझ भगवान्का शान्तिसे एकाग्रतासे भजन कर सकता है, और भजनके महान् दिव्य-आनन्द का लाभ प्राप्त कर सकता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी एक-भावका ही दूसरा नाम समभाव है। अत एव भगवान्ने 'समत्वं योग उच्यते।' (गी० २।४८) कहा है-अर्थात् सम-भाव प्राप्त करना, यानी रागद्वेषादिकल्मषोंका जनक-विषम भावको दूर करना ही योग है। क्योंकि-विषमताको दूर किये विना समता प्राप्त नहीं होती, जिस प्रकार अन्धकारकी निवृत्तिके विना प्रकाशका लाभ। जैसे प्रकाशसे अन्धकारकी निवृत्ति होती है, वैसेही समभावसे विषमभावकी निवृत्ति होती है। और भी कहा है कि—

'इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥'
(गीता० ५।१९)

जिनका मन समभावमें स्थित है, उन्होंने इस जीवनमें ही संसार को जीत लिया, अर्थात् संसारके द्वन्द्वोंसे वे मुक्त हो गये। ब्रह्म परमात्मा निर्दोष एवं सम है, इसलिये वे सदा ब्रह्ममें ही अवस्थित हैं। 'सर्वत्र समदर्शनः' (गी० ६।२९) सबमें समदर्शन करनेवाला ही योगी है। यही आध्यात्मिक-ज्ञान है। अतः भगवान्ने 'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते' (गी० ८।३) से इसी ही समभाव एवं एक-भावको ही स्वभाव कहा है। स्व यानी अपने विशुद्ध-आत्माका भाव। आत्मा सबमें समान है-एक है, अविकार है, पूर्ण है, यही भगवान् है। इसी भावको हरदम हृदयमें बांधकर रखनेवाले का नाम योगी है। इस सम-भाव द्वारा ही प्राणिमात्र से प्रेम-सद्भाव, सहानुभूति एवं बन्धुताका प्रसार होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समुदार-भाव जाग्रत होता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देशमें जब भी कभी विभिन्न-मत पंथको लेकर या ईर्ष्या-घृणित-स्वार्थ आदिको लेकर विभिन्न-जातियोंमें या विभिन्न-प्रान्तोंमें परस्पर मनोमालिन्य बढा, एवं एक-दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट करनेका प्रयत्न हुआ, तब वैदिक-सनातन धर्मके पथ-प्रदर्शक-सन्त-महात्माओंने तथा देशके विवेकी-नेताओंने इसी ही-एकत्व-भावना को जनतामें जाग्रतकर प्रेम-सद्भाव एवं शान्तिका सञ्चार किया। विश्वमें आज भी मानव, मानवको रक्त रञ्जित-जिह्वासे ग्रसने के लिए मुँह खोले खडा है, आपसमें एक-दूसरेकी सुखसम्पत्ति को हडपने को तैयार हुआ खडा है, जिधर देखो उधर ही सामाजिक-संघर्ष है, राजनैतिक-संघर्ष है, और सांप्रदायिक-संघर्ष है। इस अनिष्टसे बचावका एकमात्र यदि कोई उपाय है तो-यही एकात्मभाव की सर्वत्र जाग्रति करना ही है। विश्वमें-केवल इसी-एकत्व-भावनाके सर्वत्र प्रसारसे ही सच्ची शान्ति की स्थापना हो सकती है।

और यह मानी हुई बात है कि-द्वैतकी (भेदकी) भावना ही विरोध तथा संघर्षका कारण है। जब अद्वैत-भावनासे द्वैतकी भावना मिट जायगी, तब परस्परका विरोध एवं संघर्ष भी स्वतः मिट जायगा। इस श्रीभगवदुपदिष्ट-एकत्व-वादको अपना लेनेसे ही विश्वकी विषमताएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। राग, द्वेष, क्रोध, हिंसा, अपकार आदि घृणित-भावनाएँ दूसरोंके प्रति ही होती हैं, अपने-स्वयं के प्रति कदापि नहीं होतीं। गीता यही उपदेश देती है कि-सर्वत्र एक-भगवान् अन्तरात्मा को ही देखो, निश्चय करो कि-सर्वत्र आत्मस्वरूप ही है-अन्य-दूसरा कोई नहीं है, सर्वत्र मैं अनन्य स्वयं ही हूँ। ऐसी एकत्व-भावनाकी जागृति

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होने पर कोई किसीसे द्वेष घृणा एवं अपकार करेगा ही क्यों ?। भेद-भावना ही तो सभी अनर्थोंकी जड है। अतः विश्वकी शान्ति के लिए भी गीताके इस एकत्व-अनन्य-भावको अपना लेनेसे मनुष्यमात्रका कल्याण हो सकता है।

आधुनिक-युगके श्रीरामकृष्ण-परमहंस स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ, श्रीरमण महर्षि आदि-उच्च कोटिके वन्दनीय महात्माओंने भी स्वदेशमें एवं विदेशोंमें भी इसी ही एकत्व भावनाका उपदेश देकर विश्वको शान्तिकी तरफ आकृष्ट किया था। अतएव इसी ही एकत्व-वादसे प्रभावित होकर विदेशी-विद्वानोंने भी भारतीय-संस्कृति के मुक्त-कण्ठसे गीत गाये। राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी भी गीताके इसी तत्त्वज्ञान के बल पर ही विश्वमें शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे।

अतएव 'मामेकं शरणं व्रज' का तात्पर्यार्थ है कि-सर्वत्र मैं भगवान् सर्वात्मा एक ही हूँ, ऐसा दृढ निश्चय कर, ऐसी अनवरत-पवित्र भावना रख, ऐसा प्रभुमय निर्दोष जीवन बना, यही सच्ची भगवच्छरणागति है। इसके द्वारा ही श्री भगवान् 'सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि' अर्थात् समस्त पाप-संतापोंसे मैं तुझे मुक्त करा दूँगा, ऐसा कहते हैं। इसके द्वारा ही सत्य, अहिंसा, त्याग, चारित्र्य, अभय आदि सद्गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। शान्तिः शान्तिः शान्तिः का वैदिक त्रिविध-पाठ भी विश्वमें सफल हो जाता है।

हरिः ॐ तत्सत्-शिवोऽहं शिवः सर्वम्।

परिशिष्ट—गीतासार-तत्त्व समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महान्-आश्चर्य।

शान्तेऽनन्तमहिम्नि निर्मलचिदानन्दे तरङ्गावलि-
निर्मुक्तेऽमृतसागरांभसि मनाङ् मग्नोऽपि नाचामति ।
निःसारे मृगतृष्णिकार्णवजले श्रान्तो विमूढः पिब-
त्याचामत्यवगाहतेऽभिरमते मज्जत्यथोन्मज्जति ॥

शान्त, अनन्तमहिमारूप, निर्मल-चिदानन्दस्वरूप, द्वैत-प्रपञ्चरूप-तरंग-समूहसे वर्जित-अमृत-पूर्ण-ब्रह्मसागरके जलमें वस्तुतः सदा निमग्न रहा हुआ भी मूढ मानव, उस-अमृतानन्दमय-जलका थोडा भी आचमन नहीं कर रहा है। महात्मा कबीर की यही उक्ति चरितार्थ होती है कि-'पानीमें मीन प्यासी, सन्तो! देखकर आवे बडी हाँसी।' और निःसार, मृगतृष्णिकाके मिथ्या-संसार सागरके कल्पित-जलमें अत्यन्त ही थका हुआ मूढ मानव, बार बार डुबकियाँ लगालगा कर निकलता रहता है, उस वस्तुतः अविद्यमान, तथापि प्रतीयमान जल को यथेष्ट पीता है, आचमन करता है, उसमें क्रीडा करता है एवं उसका पुनः पुनः अवगाहन (उछलना-कूदना आदि) करता रहता है। अर्थात् सत्य-तत्त्वकी नितान्त उपेक्षाकर मिथ्या पदार्थके पीछे पडनेवाला, मानव, मूढ ही माना जाता है, 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के बदले सर्वात्मा-सत्य-ब्रह्म मिथ्या है-वह कहीं भी कभी भी किसीको भी नहीं दीखता है, और मिथ्या-जगत् सर्वथा सत्य है, सर्वत्र सदा सभी को दीख रहा है, ऐसा मानकर सत्-चित्-आनन्दघन-अद्वय-ब्रह्म तत्त्वका यत्किञ्चित् भी अनुसन्धान नहीं करनेवाला तथा असत्-जड-दुःखरूप संसारका निरन्तर-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आसक्ति के साथ-चिन्तन करनेवाला मानव मूढ नहीं तो और क्या माना जा सकता है ? और इससे वढकर महान्-आश्चर्य और क्या हो सकता है ? ।

विभत्सा विषया जुगुप्सिततमः कायो वयो गत्वरं,
प्रायो बन्धुभिरध्वनीव पथिकै र्योगो वियोगावहः ।
ज्ञातव्योऽयमसार एव विरसः संसार इत्यादिकं,
सर्वस्यैव हि वाचि, चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः ॥

शब्दादिविषय-घृणास्पद एवं दुःखप्रद हैं, यह काया भी मल-मूत्रका गंदा-थेला होनेसे अत्यन्त ही जुगुप्सित है। इस कायाका जीवन भी गमन एवं परिवर्तन-शील होनेसे भंगुर ही है। मार्गमें मिले हुए-पथिकोंके समान, स्त्री-पुत्रादि बन्धुओंका संयोग भी अन्तमें वियोग प्राप्त करानेवाला है। इसलिए यह संसार असार है, विरस है, अर्थात् सुखरहित है, दुःखालय है, अतः यह छोडने योग्य है, अर्थात् इसमें राग-आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, इत्यादि-वातें प्रायः सबकी वाणीमें ही रहती हैं, परन्तु कोई एक पुण्यात्मा-धर्मनिष्ठ-संस्कारी मानव के ही चित्तमें ये वातें चोंट जाती हैं, अर्थात्-धर्मनिष्ठ-पुण्यशील मनुष्यके हृदयमें ही इस संसार से वैराग्य होता है, धर्माचरण-हीन मनुष्य के संसार-रागकी निवृत्ति नहीं होती। इसलिए कहा है-'धर्म तें विरति, विरति तें ज्ञाना, ज्ञानतें मोक्ष यह वेद बखाना।' भावार्थ यह है कि-प्रायःलोग, वैराग्य-ज्ञान-भक्ति आदिकी वातें तो दूसरोंको सुनाने के लिए या प्रभावित करने के लिए या अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बहुत ही बनाते हैं, परन्तु ये वातें अपने हृदयमें नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रखतें, हृदयमें तो अभिमान, आसक्ति, आदि दोष ही रखते हैं, यह भी एक महान्-आश्चर्य है।

आयूँषि क्षणिकानि यौवनमपि प्रायो जराऽध्यासितं,
संयोगा विरहावसानविरसाः, भोगाः क्षणध्वंसिनः।
जानन्तोऽपि यथा व्यवस्थितमिदं लोकाः समस्तं जगत्,
चित्रं यद्गुरुगर्वभावितधियः क्रुध्यन्ति माद्यन्ति च ॥

सबके आयु क्षणभंगुर हैं, प्रायः यौवन भी वार्धक्यसे समाक्रान्त है, अर्थात् जवानी भी जवानी छे, रहेवानी नथी, देखते देखते ही जवानी चली जाती है, और बूढापा आधमकता है। स्त्री-पुत्र-धन आदि प्रिय-पदार्थोंके संयोग भी, अन्तमें वियोगजन्य दुःख देनेवाले होने के कारण विरस हैं, विषय-भोग भी एक ही क्षणमें ध्वस्त हो जाते हैं, यह सब जानते हुए भी लोग, जैसे के तैसे ही कोरे बने रहते हैं, जानते हैं, परन्तु मानते नहीं हैं, वैसा ही यह सारा जगत् बना रहता है। और इसमें भी यह बडा ही आश्चर्य देखनेमें आता है कि-इन क्षणभंगुर-पदार्थोंके अत्यन्त गर्वसे अपनी बुद्धियों को सदा परिभावित रखते हुए कभी अभिमानवश उन्मत्त हो जाते हैं, तो कभी दीन-हीन जनोंपर व्यर्थ ही क्रुद्ध हो जाते हैं।

इति महान् आश्चर्य समाप्त।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ श्री उमामहेश्वराभ्यां नमः

पूज्य महामण्डलेश्वर स्वामी, महेश्वरानन्द महाराज की

प्रकाशित अन्य पुस्तकें :—

(१) ऋग्वेद-संहितोपनिषच्छतकं - अध्यात्मज्योत्स्नाविवृति-समलंकृतम् (केवल-संस्कृतम्)

(२) शुक्लयजुर्वेद-संहितोपनिषच्छतकं-अध्यात्मज्योत्स्नाविवृतिसमलंकृतम् (संस्कृतम्)

(३) अथर्ववेदसंहितोपनिषच्छतकं - अध्यात्मज्योत्स्नाविवृति-समलंकृतम् (संस्कृतम्)

इमे ग्रन्थाः संस्कृतज्ञेभ्यः पोस्टव्ययप्रेषणेनामूल्यं दीयन्ते प्राप्तिस्थानं - सुरतगिरिबंगला, (गिरीशानन्दाश्रम) मु. पो. कनखल (हरिद्वार) जिला. सहारनपुर, उ. प्र.

(४) गायत्री मीमांसा - संध्योपासनं - पुरुषसूक्त -देवार्चनम् (हिन्दी-अनुवाद-सहितम्)

(५) श्रीहरगोविन्ददास-व्याख्यान-मंदिरम् (हिन्दी अनुवाद सहितम)

(६) श्रीशंकरसूक्तिसुधा ।

(७) गीताप्रवचनसुधा, पृष्ठ ८५०) मूल्य २॥रु. मूललागतसेभी कम, पोस्ट व्यय पृथक् (महामण्डलेश्वर-महाराज का गीता पर हिन्दीमें प्रवचन ।

(८) दक्षिणतीर्थयात्रा (हिन्दी) महामण्डलेश्वर महाराज की दक्षिणतीर्थयात्राका विशद-वृत्तान्त-प्रश्नोत्तर-सदुपदेश प्रवचन आदि ।

— प्राप्तिस्थान —

संस्कृत-महा-विद्यालय संन्यासाश्रम विले-पारला, बम्बई.

मंगल मुद्रणालय, रतनपोल-अहमदाबाद

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi